# सबला

वर्ष 6 : अंक 2 सेवाग्राम विकास संस्थान, नई दिल्ली जून-जुलाई, 1993

## सहयोग मंडल

कमला भसीन

मणिमाला

ज्ञानेंद्र प्रसाद जैन

## संपादिका

शारदा जैन

## उप-संपादिका

सुहास कुमार

वीणा शिवपुरी

## चित्रांकन

बिंदिया थापर

## वितरण

प्रतिभा गुप्ता


ग्रामीण बहनों की द्विमासिक पत्रिका—शिक्षा विभाग, मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा अनुदानप्रदत; डाक्टर शारदा जैन (सेवा ग्राम विकास संस्थान, 1 दरियागंज, नई दिल्ली-110 002) द्वारा संपादित व प्रकाशित तथा इन्द्रप्रस्थ प्रैस (सी. बी. टी.), नेहरू हाउस, 4 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110 002 में मुद्रित।

इस अंक में


| | |
|---|---|
| हमारी बात | 1 |
| हिंसा और धार्मिक कट्टरता पर औरतों की सोच —कमला भसीन | 3 |
| बेटियों के लिए एक गीत —मणिमाला | 6 |
| बढ़ी चलो लेकर साक्षरता की मशाल —वीणा शिवपुरी | 7 |
| सहारनपुर की औरतें लड़ रही हैं... —मणिमाला | 9 |
| समय के चक्के के साथ चलो | 12 |
| समाज पीड़ित लड़की को न्याय दिलाए —इंदिरा, मणीषा | 13 |
| औरत अकेली भी जी सकती है —वीणा शिवपुरी | 16 |
| औरतें अपने हकों के लिए जूझ रही हैं —सुहास कुमार | 18 |
| संकुचित नज़रिया छोड़ें —मुकुल लाल | 23 |
| मंगल कामना सिर्फ पुरुष के लिए —रश्मि स्वरूप जौहरी | 25 |
| दिशाशूल—जिंदगी भर का शूल —बालकृष्ण श्रीवास्तव | 27 |
| नई दिशाएं : नए कदम | 29 |
| डंगर दाई कुकूबेन —जुही जैन | 31 |
| बेटियों का स्वास्थ्य : नया नज़रिया | 32 |
| समस्या बाल विवाह की —दो रपटें | 33 |
| कुछ यहां की : कुछ वहां की | 35 |

# हमारी बात

महाभारत काल में दुष्ट दुश्शासन ने हस्तिनापुर राज दरबार में महारानी द्रौपदी के कपड़े उतारने का असफल प्रयास कर भारतीय इतिहास में एक बहुत शर्मनाक प्रसंग जोड़ दिया। हजारों साल बाद भी इसकी याद ताजा होते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। दुश्शासन को उस अपमानजनक व्यवहार की कीमत अपने खून से चुकानी पड़ी। याद रहे, इस दुर्घटना की जड़ में एक राज परिवार के सदस्यों का आपसी संघर्ष था। यह तब हुई जब द्रौपदी के पांचों पति घटनास्थल पर मौजूद थे और वे द्रौपदी को जुए के दांव में हार चुके थे। द्रौपदी विरोधियों की 'दासी' बन चुकी थी।

उस ऐतिहासिक घटना से अधिक दर्दनाक और बर्बर घटना इस साल 26 मई को सहारनपुर (उ.प्र.) की एक सड़क पर हुई। दिनदहाड़े नवागांव के एक गूजर परिवार के पुरुषों ने उसी गांव के बढ़ई रामकिशन धीमन की पत्नी ऊषा को तार-तार उसके कपड़े उतार कर बीच बाजार में घसीटा। उनका कसूर यह था कि वे अपने घर का कुछ हिस्सा गूजर परिवार के पशु और ट्रैक्टर बांधने के लिए देने को राजी नहीं हुए।

अपराध हर काल में होते रहे हैं और होते रहेंगे, पर इस अपराध की कठोरता इसलिए बढ़ जाती है क्योंकि क्रूर अत्याचार एक निरीह और बेबस अकेली स्त्री पर (उसका पति पहले ही जेल में ठूस दिया गया था) सैंकड़ों नर-नारियों की आंखों के सामने किया गया। किसी ने विरोध में उंगली तक नहीं उठाई। नागरिकों के जान-माल की रखवाल पुलिस भी चुप रही।

जनता और पुलिस के इस व्यवहार पर मन को दहला देने वाला सवाल उठता है कि क्या जुल्मी और धींग व्यक्ति को जब चाहे किसी कमजोर की इज्जत पर डाका डालने का कानूनी हक मिल गया है? एक सप्ताह बाद जुल्मियों को पकड़ा गया, पर मजिस्ट्रेट ने उसी दिन उन्हें ज़मानत पर रिहा कर दिया।

अपराधियों ने बढ़ई परिवार पर चोरी का झूठा इल्जाम लगाया था। गांव पंचायत ने तहकीकात में बढ़ई परिवार के घर की खाना-तलाशी ली और उसके घर का फर्श तक खोद डाला। तीन दिन बाद पंचायत ने उसे निर्दोष करार दिया। पर गूजर का लोभ और ज़ोम कम न हुआ। जब ऊषा अपने मुकदमे की पैरवी के लिए सहारनपुर गई तो उसे बिल्कुल नंगा कर पीटा और घसीटा गया। यदि मान भी लें कि बढ़ई परिवार ने चोरी की थी तो क्या अदालतें खत्म हो गईं और शिकायत करने वाले को ही सजा देने का अधिकार मिल गया। किस कानून के आधीन मामूली चोरी के लिए इतनी भयानक सजा दी जा सकती है?

दुर्घटना के बाद ऊषा धीमन के बारे में अखबारों के पन्ने रंगे जा रहे हैं। राष्ट्रीय महिला आयोग की अध्यक्षा श्रीमती जयंती पटनायक ने स्वयं मौके पर जाकर जांच-पड़ताल की और उसके बाद दिल्ली में

ऊषा और उसके पति के बयान लिए। लगने लगा है कि गूजर परिवार को बख्शा नहीं जाएगा। पर रह रहकर यह बात मन को कचोटे जाती है कि यदि घटना स्थल पर दो व्यक्ति भी जुल्मियों के खिलाफ विरोध प्रदर्शित करते तो शायद जो अत्याचार हुआ वह नहीं हो पाता।

पहले सड़क चलते व्यक्ति मारपीट करते पक्षों का बीचबचाव कर दिया करते थे। पर अब इतने भयंकर अपराध को घटते देख भी किनारा काटते चले गए। इस गिरावट का मुख्य कारण पुलिस और अदालत की निष्पक्षता में अविश्वास है। भरोसा नहीं कि पुलिस जागरूक नागरिक को ही किसी जाल में न फांस दे और उसे लेने के देने पड़ जाएं। पुलिस का कहना है कि उस पर राजनीतिक नेता नाजायज दबाव डाल कर इंसाफ के रास्ते पर चलने नहीं देते। अदालती कार्यवाही को धनी व्यक्ति झुकाकर अपने पक्ष में कर लेता है। किसी ऐसी दुरूह स्थिति में कौन किसकी मुसीबत में हाथ डाले? देखा गया है कि मित्र व पड़ोसी भी समय पर मुंह चुरा जाते हैं।

आशा की किरण ऊषा धीमन जैसी स्त्रियां दिखा रही हैं जो अत्याचार के सामने हार नहीं मानतीं और हिम्मत से उसका मुकाबला करती हैं। नवागांव के कुछ लोग भी अब उसका साथ देने लगे हैं। अदालत में पेशी के दिन गांववाले ट्रैक्टर-ट्राली में भरकर ऊषा के साथ जाते हैं।

कुछ समय पहले एक केंद्रीय मंत्री के खिलाफ एक सामाजिक कार्यकर्त्री मुक्ति दत्ता ने यह आरोप लगाने की हिम्मत दिखाई कि मंत्री ने अपने कार्यालय के निजी कमरे में उस पर बलात्कार करने की कुचेष्टा की थी। मंत्री के खिलाफ कोई कार्यवाही की आशा करना चट्टान से पानी निकालने जैसा था। पर उस साहसी स्त्री ने हिम्मत नहीं हारी और अदालत में हर पेशी को भुगतातीं रही। आखिर में मंत्री जी ने अपने सफेद बालों की दुहाई देकर माफी मांगी और मामला रफादफा हुआ।

एक महीना भी नहीं हुआ जब उड़ीसा के एक मंत्री के खिलाफ एक महिला सरपंच ने शिकायत की कि मंत्री ने उसकी इज्जत से खेलने की बेजा हरकत की थी। उस शिकायत पर एक बार तो मंत्री जी का पारा आसमान को छू गया पर जांच जारी है और उन्हें दिल्ली में राष्ट्रीय महिला आयोग के सामने पेश होकर अपनी सफाई में बयान देने को मजबूर होना पड़ा है।

इन मिसालों से यही बात उभरती है कि पीड़ित औरतें हिम्मत न हारें। क्षेत्रीय महिला संगठन और सरकारी मशीनरी का सहारा लेकर अपनी आवाज बुलंद करती रहें। अखबार के कॉलमों में चर्चा हो जाने पर पुलिस ऐसे मामलों को दबाने में कामयाब नहीं हो पाएगी। इसलिए स्त्री-अपराधों की पीड़ित बहनें पूरी हिम्मत जुटा कर इंसाफ का दरवाजा खटखटाती रहें। उनकी कोशिशों का शुभ नतीजा ही निकलेगा।

**ज्ञानेंद्र प्रसाद जैन**

---

# हिंसा और धार्मिक कट्टरता पर हम औरतों की सोच

कमला भसीन

आज हमारे चारों ओर धर्म के नाम से राजनीति खेली जा रही है और धर्म का नाम लेकर हिंसा फैलाई जा रही है। आज हमें सोचना है कि हम धर्म किसे मानते हैं और हिंसा के प्रति हमारा क्या रवैया है। गांधी, बुद्ध, नानक, महावीर, निज़ामुद्दीन औलिया, अजमेर वाले ख्वाजा, कबीर, मीराबाई के देश में आज जो धार्मिक कट्टरता फैलाई जा रही है उसके खिलाफ़ नं बोलने का मतलब है बर्बादी, शान्ति और चैन की बर्बादी, हमारी गंगा जमुनी संस्कृति की बर्बादी, सर्वधर्म समभाव के विचार की बर्बादी, हिंदुस्तान के सब धर्मों को अपनाने वाली ख़ासियत की बर्बादी।

इसी संदर्भ में मैं आज 'सबला' के पाठकों के सामने हिंसा, मर्दानगी और धार्मिक कट्टरता पर अपने कुछ विचार रख रही हूं। मेरा यह मानना है कि समझदार, अहिंसा वादी, कोमल दिल वाले मर्दों को हिंसा के खिलाफ आवाज उठानी होगी। उन्हें यह कहना और दिखाना होगा कि मर्दानगी का मतलब अक्खड़पन, लड़ाकूपन, हिंसा, औरों को डराना-धमकाना नहीं होता।

## हिंसा के संस्कार

हम यह मानते हैं कि हिंसा सिर्फ मर्द ही नहीं करते। औरतें भी हिंसा कर सकती हैं, ज़हर फैला सकती है। आजकल कई सांप्रदायिक दल औरतों को अपने साथ ले रहे हैं। कई औरतें हिंसा करने के लिए लोगों को उकसाती हैं, पर फिर भी ये संख्या में बहुत कम हैं। अपने दलों में इनकी ताक़त भी कम है। निर्णय लेने वाले लगभग सभी पुरुष हैं।

प्रकृति से नहीं, अपने अनुभव की वजह से औरतें कम आक्रामक और हिंसात्मक होती है। उन्हें शुरू से ही नम्र, शांत, अनाक्रामक होने की शिक्षा दी जाती है। 'तू लड़की है, तू भाई को क्यों मारती है', 'तू झगड़ालू बनेगी तो ससुराल में हमारी नाक कटाएगी' यह कह कर लड़कियों को गुस्सा पीना सिखाया जाता है।

निम्न, मध्य और मध्यमवर्ग के परिवारों में लड़कियों को किसी प्रकार का शारीरिक व्यायाम करने का भी मौका नहीं मिलता। इसलिए वे शरीर से भी किसी का मुकाबला करने के काबिल नहीं होतीं। आक्रमण करने का तो सवाल ही नहीं उठता। अक्सर वे घरेलू हिंसा का भी शिकार होती हैं और

उन्हें शिक्षा दी जाती है धरती जैसे सब कुछ सहने की। यह सारी शिक्षा और औरतों का दूसरों पर निर्भर रहना उन्हें शक्तिहीन बना देता है।

### मर्दानगी

इसके अलावा हिंसा और लड़ाकूपन औरतों की प्रकृति के खिलाफ माना जाता है। अगर कोई स्त्री निर्भय, आज़ाद व हिम्मतवाली होती है तो उसे मर्दाना कहा जाता है। पुरुषों से मुकाबला करने वाली औरत की इज्ज़त ताकतवर औरत कह कर नहीं बल्कि उसे मर्द कह कर की जाती है। उदाहरण के रूप में देखिए "खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।" इन्दिरा गांधी के लिए कहा जाता था कि "केबिनट में सिर्फ वही मर्द थीं"। इन्हीं सब कारणों से औरतों का हिंसा भड़काने और करने में कम हाथ होता है।

दूसरी ओर ताक़त, लड़ने की शक्ति, आक्रामकता, बदला लेने की क्षमता, मारने या मरने की हिम्मत ये सब मर्दों के 'गुण' कहलाते हैं। ये मर्दानगी का दूसरा नाम है। जो मर्द अक्खड़, लड़ाकू, आक्रामक नहीं होते, उनका "औरतों जैसा है" कह कर मजाक उड़ाया जाता है। उन्हें कहा जाता है "चूड़ियां पहन कर घर बैठ जाओ"। योद्धा, धरती-पुत्र आदि की मानसिकता अखाड़ों में उभारी जाती है, जहां पुरुषों को सिखाया जाता है "पुरुषत्व" या "मर्दानगी"।

## हमारे अनुभव, हमारी सोच

हम औरतें जो हिंसा को नज़दीक से देख चुकी हैं, इस प्रकार के मर्दों और हिंसा के खिलाफ हैं। जब हम हिंसा के खिलाफ बोलती हैं तो हम इस तरह की हिंसात्मक मर्दानगी की भी निन्दा करती हैं। हम मर्दों की हिंसा की यश गाथाओं के खिलाफ हैं। आक्रामक पुरुषत्व की प्रशंसा के खिलाफ हैं क्योंकि हम जानती हैं कि मर्दानि या आक्रामक मर्द किसी के भी रक्षक नहीं हो सकते। वो अपनी ताक़त से इतने बौरा से जाते हैं कि उनके लिये उचित-अनुचित का भेद करना मुश्किल हो जाता है।

हम आक्रामक मर्दानगी के खिलाफ हैं क्योंकि हम जानते हैं कि ऐसे मर्द कभी भी दूसरों को अपने बराबर नहीं मानते, खासतौर से औरतों को नहीं। वे केवल रक्षक, स्वामी, पति, मालिक हो सकते हैं, साथी नहीं। हम सदियों के अपने अनुभवों से जानती हैं कि कितनी जल्दी ऐसे मर्दों के हाथ अपने से कमज़ोर लोगों पर उठ जाते हैं, चाहे वो उनके नौकर हों, बच्चे हों या पत्नी।

पत्नी के ऊपर हाथ उठाना उनके लिए आसान सिर्फ इसलिए नहीं होता क्योंकि वे ताक़तवर होते हैं, बल्कि इसलिए भी होता है क्योंकि उन्हें पितृसत्तात्मक समाज की इजाज़त और शह होती है। एक ऐसी विचारधारा की शह होती है जो औरत को मर्द से कमतर मानती है, जो मर्द को मालिक, स्वामी, पति मानती है।

## गलत विचारधाराएं

बहुत से धार्मिक ग्रंथ मर्दों को अधिकार देते हैं दासों, औरतों और बच्चों के साथ एक सा व्यवहार करने का, उन्हें अपनी संपत्ति समझने का। मनु ने भी कहा कि हर आयु की औरत को हमेशा किसी पुरुष के आधीन रहना और रखना चाहिए। ऐसी विचारधाराएं हम औरतों के लिए जानलेवा बन गई हैं। इनका असर हमारी रोज़मर्रा की घरेलू ज़िंदगी पर पड़ता है।

खोमेनी के ईरान में उलेमा और राज्यसत्ता दोनों ने हर मर्द को अपनी औरतों को मार-पीट कर "रास्ते पर लाने का" अधिकार दे दिया था। अपने ही देश में किए गए सर्वेक्षणों से हमें पता चलता है कि हमारे परिवारों में औरतों पर कितनी हिंसा होती है, कितनी औरतों को तरह-तरह की अग्नि परीक्षा देने पर मजबूर किया जाता है।

हम औरतें मतभेदों को हिंसात्मक तरीकों से सुलझाने के खिलाफ हैं, चाहे ये मतभेद परिवार में हों, समाज में हो या राजनीति में। एक बार पनपने पर हिंसा की प्रवृति घर के बाहर तक ही सीमित नहीं रहती, उसका असर जीवन के हर पहलू पर पड़ता है, खासतौर से परिवार और स्त्री-पुरुष संबंधों पर।

## नारीवादी सोच

बहुत से मर्द हिंसा की निन्दा करते हैं, लेकिन वे समाज में होने वाली हिंसा और पारिवारिक हिंसा के बीच क्या संबंध हैं इसकी बात नहीं करते। इसी प्रकार ज़्यादातर लोग जो प्रजातंत्र और समता की बात करते हैं वे परिवार में प्रजातंत्र और समता की बात नहीं करते। नारीवादी सोच की यही खासियत है कि हम समाज और परिवार, सार्वजनिक और व्यक्तिगत को जोड़ कर देखते हैं। अहिंसा की राजनीति के बिना प्रजातंत्र कहीं भी जी और पनप नहीं सकता, न परिवार में, न गांव में, न देश में और न ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर। □

# बेटियों के लिए एक गीत

ये बेटियां ये बेटियां
हमारी प्यारी बेटियां

सृष्टि का आधार हैं
प्यार की पुकार हैं
कुदरती श्रृंगार हैं
हमारी प्यारी बेटियां

शांतिप्रिय बेटियां
मेहनतकश ये बेटियां
सृजनशील बेटियां
साहसी-वीर बेटियां
हमारी प्यारी बेटियां

प्यार से पलेंगी तो
बढ़ेंगी, फिर चलेंगी, खूब पढ़ेंगी
कुछ नया गढ़ेंगी अपनी बेटियां
हमारी प्यारी बेटियां

अड़ेंगी सच की शान के लिए
लड़ेंगी जन के मान के लिए
मिटेंगी शांति-न्याय के लिए
मरेंगी मनुज समाज के लिए

ये चल पड़ें तो आसमां
चल पड़ेगा साथ-साथ
ये गा उठें तो महफिलें
गा उठेंगी साथ-साथ
ये हंसें तो वादियां
हंस पड़ेंगी साथ-साथ

इन्हें ज्ञान का श्रृंगार दो
अक्षर के हथियार दो
स्वतन्त्रता और न्याय दो
समता का अहसास दो
अवसर और विश्वास दो
स्नेह और सम्मान दो

न-यकीनी के इस दौर में
यकीन की शमां बनेंगी बेटियां
हमलों के इस होड़ में
बेजुबानों की जुबां बनेंगी बेटियां
अंधियारी-स्याह रात में
दिया बनेंगी बेटियां
हमारी प्यारी बेटियां

मणिमाला

# बढ़ी चलो लेकर साक्षरता की मशाल

वीणा शिवपुरी

हमारे देश के महिला आंदोलन के सामने बहुत से मुद्दे हैं। घर में बेटी का नीचा दर्जा, औरतों के साथ घरेलू मारपीट, बढ़ती मंहगाई, कम मज़दूरी, अधिकार हीनता और न जाने क्या-क्या। इन सब समस्याओं को एक जगह गिनाना भी संभव नहीं। गांव-गांव में औरतों के समूह, संस्थाएं इन समस्याओं से जूझ रही हैं। फिर भी इनका अंत कहीं नज़र नहीं आता। सभी कमर कस कर इस लड़ाई में जुटी हैं।

## आशा की किरण

इस पूरी तस्वीर में अगर कहीं आशा की किरण नज़र आती है तो वह है साक्षरता अभियान। पिछले कुछ सालों में देश के कुछ हिस्सों में चले साक्षरता कार्यक्रमों ने जो असर दिखलाया है वह हम सबको जोश से भर देता है।

आज भी भारत में स्त्री साक्षरता दर बहुत नीची है। बहुत कुछ करना बाकी है लेकिन ख़ास बात यह है कि कुछ जगहों पर साक्षरता ने औरतों को ताक़तवर बनाया है। इन उदाहरणों ने रास्ता दिखलाने वाली मशाल का काम किया है। यह भी साबित कर दिया है कि साक्षरता का मतलब केवल लिखना पढ़ना सीखना नहीं है। साक्षरता के ज़रिए सोच के दरवाजे खुलते हैं। रास्ते की अड़चनों से निपटने की ताक़त आती है।

## कुछ दमदार उदाहरण

आंध्र प्रदेश में प्रौढ़ शिक्षा की किताब 'सीतम्मा की कहानी' ने औरतों को जिस तरह जगाया वह अब सबको मालूम है। वहां की औरतों ने आगे बढ़ कर देशी शराब 'अरक' के खिलाफ़ अभियान चलाया। शराब बनाने और बेचने के धंधे में बड़े-बड़े लोग थे। सरकार को भी उससे आमदनी होती थी। गांव की ये औरतें इतने ताक़तवर लोगों से टक्कर लेने में नहीं डरी। अंत में सरकार को झुकना पड़ा।

यह सही है कि सिर्फ़ किताब पढ़ कर ही सब चेतन नहीं हो जाते। सही हालात भी होने चाहिए। लेकिन साक्षरता और किताबों से चेतना का बीज ज़रूर पड़ता है। वह बीज फले-फूले यह हम पर निर्भर करता है।

आंध्र प्रदेश में औरतों की सफलता देख कर अब दूसरे प्रदेशों की औरतें भी शराब के खिलाफ़ लड़ाई छेड़ रही हैं। शराबखोरी का सबसे बड़ा नुकसान तो औरतें ही भोगती हैं। मर्द शराब में पैसा उड़ा देते हैं जबकि परिवार भूखा मरता है। शराब पीकर औरतों के साथ मार पिटाई होती है। यहां तक कि मेहनत से कमाई औरत की आमदनी भी मर्द छीन लेते हैं। इस सबको औरतें चुपचाप क्यों सहें?

सरकार ने देश के तीन राज्यों उत्तर प्रदेश, गुजरात और कर्नाटक में महिला समाख्या कार्यक्रम चालू किया है। इस कार्यक्रम के तहत जिस तरह से उन इलाक़ों की औरतों ने ताक़त पाई है वह

देखने लायक है।

कहीं औरतें पानी मुहैया कराने के लिए लड़ रही हैं। कहीं वे हैंडपंप मिस्त्री का काम सीख कर मुस्तैदी से गांव-गांव घूम रहीं हैं। अपनी ज़मीनों पर अपना कानूनी हक़ मांग रही हैं। अपनी साक्षरता की किताबें खुद रच रही हैं। यानि अब औरतें खुद तय करेंगी कि वे क्या पढ़ना चाहती हैं और क्या सीखना चाहती हैं।

इस साल मार्च से अप्रैल तक एक महीने के लिए पूरे देश में 'समता' के झंडे तले औरतों की शिक्षा, समानता और शांति की लहर चली। यह लहर अपने पीछे इतने बीज सींच आई है कि आने वाले समय में वहां भरपूर फ़सल लहलहाएगी। जागृति और चेतना की फ़सल।

## साक्षरता से ताक़त

इन सब उदाहरणों से बड़ी हिम्मत बंधती है। लिखना पढ़ना सीखने से रोज़मर्रा की ज़िंदगी में फ़ायदा ज़रूर है लेकिन सिर्फ़ इतना ही काफ़ी नहीं है। असली फ़ायदा तो जब है कि इसके ज़रिए औरतें अपनी समस्याओं से निपटना सीखें। चाहे वह समस्या पानी की हो या शराबख़ोरी की।

साक्षरता तो एक पहिया है जो ज़िंदगी की गाड़ी को अच्छी तरह आगे ले जाता है। पहिया घूमता है तो गाड़ी आगे बढ़ती है। पर ध्यान रहे, पहिए और गाड़ी के बीच की कीली मज़बूत रहे। वरना पहिया घूमता रहेगा और गाड़ी आगे नहीं बढ़ेगी। ऐसी साक्षरता का कोई फ़ायदा नहीं जो व्यक्ति को अपने अधिकारों के प्रति सचेत न करे। □

# सहारनपुर की बहनें लड़ रही हैं शराब के खिलाफ

मणिमाला

कितना काम रहता है गांव की गरीब औरतों के पास। घर देखो। बच्चे देखो। खाना पकाओ। घर साफ करो। कपड़े साफ करो। खेत पर जाओ। बीज बोओ। घास निकालो। खाद डालो। पौधे बड़े न हो जाएं तब तक उनकी सेवा करो। पक जाएं तो काटने जाओ। यह बात छिपी नहीं है कि गांव में औरतें ज़्यादा काम करती हैं। घर में भी और बाहर भी। इतना काम किसी भी व्यक्ति को थका देने के लिए काफ़ी है। पर वे अच्छी तरह जानती हैं कि उनके कंधे पर ही गांव चलता है।

ऐसे में अगर कोई तीसरा मोर्चा संभालना पड़ जाए तो? हमारे लिए यह सवाल पहाड़ सा सवाल हो सकता है। लेकिन उनके लिए? कुछ भी नहीं। हंसते गाते तीसरे मोर्चे पर भी शुरू। यही कहानी है सहारनपुर के पठेड़ गांव की औरतों की।

### ठेका शराब का

उनके गांव पठेड़ में 30 मार्च 1990 को शराब का ठेका खुला था। यह गांव सहारनपुर स्टेशन से 12 किलोमीटर दूर है। रेलवे स्टेशन से बस सीधी जाती है। बस पड़ाव पर ही यह ठेका खुला।

जब ठेका खुला तब औरतों ने बहुत विरोध किया था। उन्हें पता था कि इस गांव के ज़्यादातर लोग गरीब हैं। मज़दूरी करते हैं। रोज कमाते हैं। रोज खाते हैं। रोज़ कमाई से थोड़ा बहुत बचाते हैं। उसी से बच्चों को पढ़ने के लिए स्कूल भेजते हैं। गांव के करीब दो सौ परिवारों में से आधे परिवारों के बच्चे ही स्कूल जा पाते होंगे। औरतों को डर था कि शराब का ठेका खुला तो रोटी के पैसे शराब पर खर्च होंगे। बच्चों को स्कूल भेजना मुश्किल हो जाएगा। शराब पीकर जब लोग अपने होश गवां बैठेंगे तो औरतों को छेड़ेंगे।

शराब के ठेके के बगल में आम का बाग है। बड़ा सा। औरतें शौच के लिए आती हैं वहां। उन्हें डर था कि अब जवान लड़कियां बेहिचक नहीं निकल पाएंगी। घर-घर में पैसे को लेकर झगड़े होंगे। औरतों की पिटाई होगी। बसा-बसाया घर उजड़ेगा। शांति की जगह लड़ाई ही लड़ाई होगी।

## पहला विरोध

इसीलिए ठेका खुलने की खबर मिलते ही वे समूह में सहारनपुर जिलाधिकारी के पास गईं। उन्होंने मिन्नतें की कि इस गांव को बर्बादी की राह न ले जाएं। जिलाधिकारी ने यह कह कर उन्हें वापस भेज दिया कि इस साल तो नीलामी हो चुकी है। अगले साल उसकी नीलामी नहीं होगी। मन मार कर वे लौट आईं। लेकिन यह फैसला कर लिया कि अगले साल फिर जाएंगी जिलाधिकारी के पास।

वे गईं। जवाब वही पुराना। इस साल तो नीलामी हो चुकी है। अगले साल नहीं होगी। बस अगले साल...अगले साल...करते-करते तीन साल गुजर गए।

## बढ़ती समस्याएं

इधर गांव का बुरा हाल। ठेका खुलते समय जिस बात का डर था, वही सब हुआ। जो कभी नहीं पीते थे, वे भी पीने लगे। एक बोतल से शुरू किया। छह तक पहुंच गए। औरतों को पैसे के लिए उनके पति मारने पीटने लगे। पैसे न रहने पर घर के बर्तन बेच आते। उससे पीते।

उन्हें देख कर बच्चों ने भी पीना शुरू कर दिया। पहले बोतल में बची रह गई एक-दो बूंद से स्वाद चखा। फिर बोतल की ललक होने लगी। पैसे कहां से आते? पहले अपने घर के सामान बेचे। फिर दूसरों के घर पर हाथ मारने लगे। नतीजा? जिस गांव में कभी किसी बच्चे ने चोरी नहीं की थी, उस गांव के बच्चे चोरी के आरोप में जेल गए। गांव का दोस्ताना माहौल बिगड़ा। जिनके बच्चे जेल गए उन्हें लगा कि उनके बच्चों को फंसा दिया गया है। जिस गांव में कभी झगड़े-फसाद नहीं हुए थे, उस गांव में भी होने लगे। एक-दो बार तो शराब की वजह से मजहबी दंगा होते-होते रुका।

इस गांव में दोनों मज़हब के लोग रहते हैं। मिलजुल कर रहते हैं। आपस में लड़ते नहीं हैं। 1990 और 1992 में कई बार बाहर के लोग उन्हें भड़काने आए थे। लेकिन वे नहीं बहके। सड़क के एक तरफ मस्जिद है। दूसरी तरफ मन्दिर है। मस्जिद के अजान और मन्दिर की आरती के बीच कभी कोई टकराहट नहीं हुई। उसी गांव में जून माह में छह तारीख को शराब पीने के सवाल पर

तनाव बन गया था। गांव के लोग समझदार हैं। कुछ होने नहीं दिया।

## बहनें जुड़ीं

लेकिन ऐसे कब तक? रामरत्ती नाम की एक सखी आगे आई। वह महिला सामाख्या कार्यक्रम की सखी है। पहले अनपढ़ थी। इसी कार्यक्रम

के दौरान उसने पढ़ना सीखा है। उसका घर भी शराब से बर्बाद हो रहा था। वह संतरा से मिली। उसकी भी वहीं कहानी। दोनों रामो से मिलीं। रामो जाहन्वी से मिली। जाहन्वी 'दिशा' नाम की सामाजिक संस्था में काम करती है। यह संस्था 1982 से ही यहां काम कर रही है। इसी संस्था के हस्तक्षेप से गांववालों ने मजदूरी का सवाल हल कर लिया था। पहले औरतों को मर्दों से कम मज़दूरी मिलती थी। अब दोनों को बराबर मिलती है। मज़दूरी बढ़ भी गई है। 20 रुपए रोज़ की हो गई है।

इन सबने मिलकर महिला जागृति समिति बनाई। तय किया कि इस बार प्रशासन के आश्वासन पर विश्वास नहीं करेंगी। 24 मार्च को सहारनपुर में ठेके की नीलामी होने वाली थी। करीब दो सौ औरतें वहां चली गईं। उन्होंने उस दिन नीलामी नहीं होने दी। लेकिन एक दिन चुपके से 30 अप्रैल को नीलामी कर दी गई। गरीब दास ने ही इस बार भी ठेका खरीदा। उसी ने मेरठ, मुजफ्फरनगर और सहारनपुर जिले का ठेका लिया है। 17 करोड़ रुपए की बोली लगाई थी उसने।

## गांव में धरना

अब औरतों ने तय किया कि गांव में ही इसके खिलाफ मोर्चा खोलेंगी। 30 मार्च को करीब पांच सौ औरतें शराब की दुकान के सामने धरना देकर बैठ गईं। दुकानदार से मिन्नतें कीं कि वह दुकान बंद कर दे। दुकानदार भी नहीं चाहता कि गांव में शराब बिके। उसने तो किराए के लिए अपनी दुकान दे रखी है। वह दुकान बंद कर चला गया। दुकान के बाहर औरतों ने पोस्टर चिपकाए। नारे लिखे। चप्पल और जूतों की माला लटकाई। और धरना देकर बैठ गईं।

इस बीच उन्हें फसल काटने जाना पड़ा। बारी-बारी से उन्होंने फसल काटी। बारी-बारी से जाकर घर सम्भाला। रात में वहीं सोईं धरने पर। उनके साथ उनके दूधमुंहे बच्चे भी थे। मार्च की सर्दी। मई की गर्मी और जून की बारिश। मौसम ने तीन बार रंग बदला। तीन बच्चे मर गए वहीं। लू लहर से। सड़ककातला से आने वाली एक सखी मति का तीन माह का गर्भ का बच्चा रास्ते में दम तोड़ गया। वह फिर भी एक दो-दिन आराम करके धरने में आती रही।

## प्रशासन की बेरुखी

प्रशासन के लोग फिर भी नहीं आए। सरकार को लगता है कि एक दिन थक कर वे उठ जाएंगी। लेकिन महिलाओं ने तय कर रखा है कि वे ठेका बंद करवा कर ही दम लेंगी। 26 जून को पूरे पठेड़ गांव की औरतें फिर गईं सहारनपुर जिलाधिकारी के पास। उस दिन देश भर में सरकार नशा विरोधी दिवस मना रही थी। लेकिन उन पर लाठियां बरसाई गईं। आठ औरतों को खूब चोटें आईं। एक हफ्ते तक वे अस्पताल में पड़ी रहीं। उनकी हड्डियां टूटी, लेकिन हौसला फिर भी नहीं टूटा। अब तो मर्द भी इस लड़ाई में शामिल हो गए। पीने की कसमें खाने लगे हैं। धरने पर बैठने लगे हैं। □

# बहना, समय के चक्के के साथ चलो

साइकिल से जन-अभियान का क्या वास्ता? ऐसा लग सकता है मगर हक़ीकत कुछ और ही है। पुद्दूकोट्टाई ज़िले की ग्रामीण महिलाओं ने पिछले सवा डेढ़ साल में लगभग एक ल। ख की संख्या में साइकिल चलाना सीखा है। अगर 10 साल से कम उम्र की लड़कियों को छोड़ दें तो ज़िले की एक चौथाई महिलाएं आज साइकिल चलाना जानती हैं। सबके पास अपनी साइकिलें नहीं भी हैं तो किराए पर ले लेती हैं। साइकिल का चक्का आज़ादी का प्रतीक बन गया है।

### साइकिल के लिए कर्ज़

बेहद पिछड़े, रूढ़ीवादी क्षेत्र की, पर्दे में रहने वाली इन महिलाओं के लिए ऐसी पहल करना आसान नहीं था। इनको प्रेरणा देने वाली वहां की ज़िला महिला कलेक्टर शीला रानी चुंकट थीं। उन्होंने एक सरकारी स्कीम के तहत् साइकिल खरीदने के लिए कर्ज़ा मिलने की बात बताई। शर्त थी उन्हें साइकिल चलाना आना चाहिए।

### उत्साह की लहर

बस, फिर क्या था। खेतों में काम करने वाली, खदानों में काम करने वाली, गांव की स्वास्थ्य कार्यकर्ता, नर्सें, बालवाड़ी, आंगनवाड़ी कार्यकर्ता, पत्थर तराशने वाली, दस्तकारी करने वाली, ग्राम सेविकाएं, स्कूली टीचरें सब दिखने लगीं साइकिल पर सवार। किसी भी क्षेत्र की महिलाएं पीछे नहीं रहीं।

खुद एक जगह से दूसरी जगह जा सकने की भावना से ही एक नई आज़ादी, नई ताक़त, नये भरोसे की एक ऊर्जा पैदा हुई है। समय की बचत, रोजाना के कामों में सहूलियत। पानी लाना, बच्चों को स्कूल पहुंचाना, बाज़ार से राशन लाना, अस्पताल ले जाना सब काम ज़्यादा आसानी से कर पा रही हैं। एक बेहतर ज़िंदगी का रास्ता खुल गया है।

महिला दिवस पर लगभग 1500 महिलाएं साइकिल पर सवार रैली में शरीक हुईं। पिछले साल हजारों महिलाओं ने अपनी कुशलता का एक साथ प्रदर्शन किया। प्रभावित होकर यूनिसेफ़ ने इलाके की सक्रिय महिला कार्यकर्ताओं के लिए 50 मोपेड दीं। यह सब शीला रानी चुंकट के प्रयास से हो सका है।

चाहे उन पर कोई हंसे, इन महिलाओं के लिए यह एक महत्वपूर्ण कदम है। चक्के ने दिखाया है एक नया रास्ता।

**पी-सांईनाथ**

# समाज पीड़ित लड़की को न्याय दिलाए

इंदिरा, मणीषा

इस लेख में बांसवाड़ा (राज.) की गढ़ी पंचायत समिति के गांव सरेड़ी की स्वर्ण जाति की एक ब्याहता की दुखभरी गाथा है। आदिवासी समाज की तरह स्वर्ण जाति में औरतों की दूसरी शादी का रिवाज नहीं है। लड़की कभी पिता व कभी पति की दया पर जिंदगी जीने को मजबूर रहती है।

ऐसे मामलों में एक जिम्मेदार व्यक्ति और समाज क्या भूमिका निभाए यह बहुत अहम् सवाल हैं। पाठक अपनी प्रतिक्रिया भेजें।

संपादिका

सरेड़ी निवासी शांति लाल शुक्ला के बेटे महेन्द्र शुक्ला की शादी गिरीश चंद्र पांइया की बेटी लता से 5 साल पहले हुई थी। शादी के कुछ ही महीने बाद उसे और दहेज लाने के लिए तंग करना शुरू कर दिया गया। उसे कई-कई दिन अंधेरे बंद कमरे में रखा जाता। किसी से मिलने नहीं दिया जाता। उसके साथ मारपीट की जाती। उसे घर पत्र भी नहीं लिखने दिया जाता।

कई बार उसे मायके छोड़ आते, फिर वापस ले जाते। वापस ले जाते समय गलतियों के लिए माफी मांगते, लेकिन घर जाकर लता के साथ फिर वही बुरा व्यवहार शुरू हो जाता। पिछले करीब डेढ़ साल से लता अपने पिता के घर रह रही है और ससुराल-वालों ने उसे बुलाने की कोई कोशिश नहीं की।

करीब 5 महीने पहले लता के पिता को पता चला कि शांतिलाल महेंद्र की दूसरी शादी कर रहे हैं। दूसरी शादी पंचायत समिति गढ़ी के जौलाना गांव के रहने वाले ध्रुवशंकर भट्ट की लड़की धर्मिष्ठा से तय हुई है। लता के पिता ने हमें सूचना दी। हमने लता से बातचीत की। उस पर क्या-क्या बीती हमें विस्तार से पता चला। हमने शांतिलाल व महेंद्र के परिवार वालों से मिलना चाहा लेकिन कई बार की कोशिशों के बावजूद उनसे मिलना नहीं हो पाया।

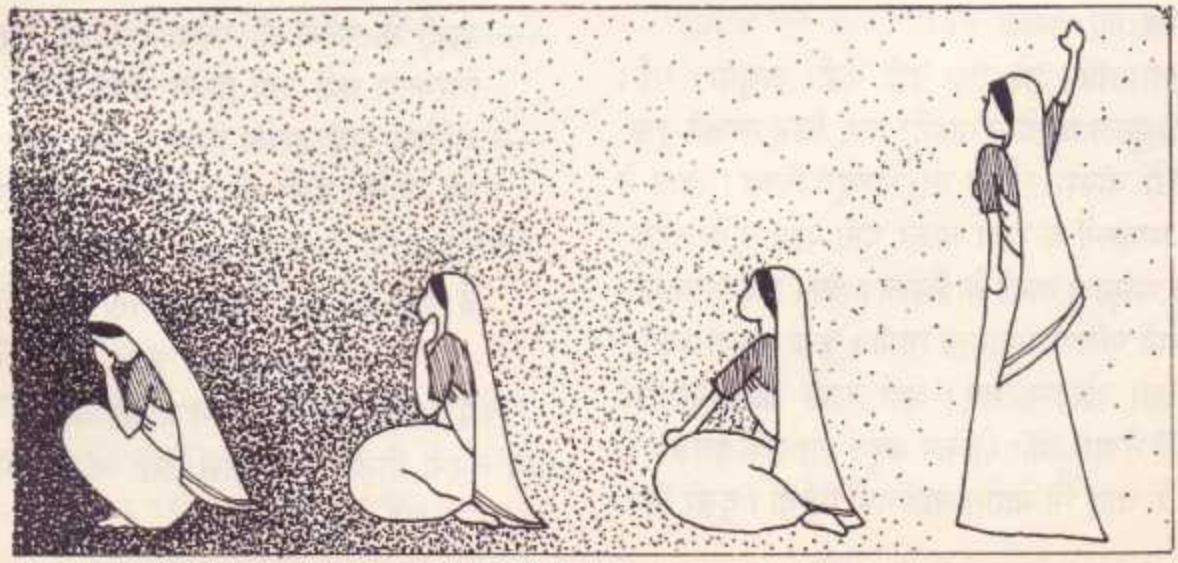

## दूसरा ब्याह

लोगों से बातचीत कर पता चला कि लता के ससुराल वाले अच्छे लोग नहीं हैं। दूसरी शादी एक प्रकार से उनके यहां रिवाज़ बन गया है। शांतिलाल जी ने खुद दो शादियां की हैं। उनकी पहली पत्नी गांव में ही रह कर जैसे-तैसे अपनी जिंदगी बसर कर रही है।

हम जौलाना निवासी ध्रुवशंकर भट्ट व उनकी पुत्री धर्मिष्ठा से मिले। लता की स्थिति बताकर उनसे इस विवाह के बारे में फिर से सोचने को कहा।

धर्मिष्ठा ने कहा—यदि आप लता को उसके ससुराल फिर से भेज सकते हो तो शीघ्र भेजो, अन्यथा यह शादी तो होगी ही।

ध्रुवशंकर ने कहा—आप सैद्धांतिक रूप से जो कह रहे हैं वह सही है, लेकिन व्यवहार में मानने योग्य नहीं है। मैं नहीं मान सकता।

महेंद्र शुक्ला के घरवालों को जब यह सब पता चला तो उन्होंने हमसे संपर्क किया कि यह शादी तो ज़रूर होगी। हां, वह लता को कुछ धन-राशि दे सकते हैं। लता के घरवालों को यह मंजूर नहीं था। क्या शादी जैसे पवित्र बंधन को धन के बल पर तोड़ा जा सकता है?

लता अपने को रोक नहीं पाई। ससुराल गई। मगर ससुराल वालों ने मारपीट कर, बिना उसकी कुछ सुने उसे वापस लौटने पर मजबूर किया। लता ने अपने घरवालों के साथ जाकर धारा 498-ए के तहत् पति व ससुराल वालों के खिलाफ केस दर्ज करवाया।

हमने पुलिस सहायता मांगी। कुछ प्रमाण इकट्ठे करने हम जौलाना गए। वहां शादी ज़ोर-शोर से होने की तैयारी थी। लेकिन बहुत रात तक इंतज़ार करने के बाद भी बारात वहां नहीं पहुंची। दूसरे दिन कुछ लोगों से पता चला कि देर रात गए यह शादी किसी मन्दिर में संपन्न करवा दी गई।

## समाज की भूमिका

— क्या शादी कोई खेल तमाशा है जिसे जब चाहा रचा लिया, जब मन चाहा एक झटके में तोड़ दिया?

— कब तक दहेज रूपी नाग स्त्रियों को डसता रहेगा?

— गांव समाज व धर्मिष्ठा ने क्यों नहीं ऐसे लोगों का बहिष्कार कर उन्हें प्रताड़ित किया?

— ध्रुवशंकर एक अध्यापक हैं। क्या वे बच्चों के भविष्य निर्माण करने योग्य हैं? उन्होंने अपनी ही जाति के भाई की बेटी का हक छीनकर अपनी बेटी का जीवन आबाद करने की कोशिश की।

— आखिर कब तक नारी को ही नारी के खिलाफ हथियार बनाकर इस्तेमाल किया जाता रहेगा?

— महिला ही क्यों महिला के दुख को नहीं समझ पाती है।

— समाज ने महेंद्र के दूसरे ब्याह को मौन स्वीकृति दी। क्या समाज द्वारा ऐसे संबंधो को मान्यता देना ठीक होगा?

— शादी के पहले ही महेंद्र व उसके पिता को गिरफ्तार क्यों नहीं किया गया?

— धर्मिष्ठा एवं उसके पिता ने सब कुछ जानते हुए भी ऐसे रिश्ते को स्वीकारा। यह कैसे मान लिया कि आज जो कुछ लता के साथ हुआ है कल धर्मिष्ठा के साथ नहीं होगा?

## समस्या का हल

हमें अपनी भूमिका, समाज को अपनी भूमिका तय करनी होगी। हम किस तरह भविष्य में ऐसी घटनाओं को होने से रोकें।

— शुरुआत हम अपने ही घरों, अपने आस-पास से करें।
— अगर किसी घर में बहू-बेटी के साथ बुरा व्यवहार या अत्याचार हो रहा है तो चुप न रहें। परिवार के सदस्यों को समझाएं। लड़की को हिम्मत देते हुए सही रास्ता दिखाएं।
— अगर लड़की के प्रयासों के बावजूद संबंध बिगड़ते ही जाएं तो बात अपने तक सीमित न रखकर अपने पीहर व अन्य रिश्तेदारों को इसकी खबर ज़रूर देती रहें। चुपचाप सहने से ऐसे व्यवहार को बढ़ावा मिलता है।
— पीहर वालों को भी अपनी बेटी के साथ हो रहे अत्याचार को जानबूझकर अनदेखा नहीं करना चाहिए। अन्य बच्चों के विवाह न होने के डर से बेटी को ससुराल में अकेले सब कुछ सहने को मजबूर न करें।
— अगर बेटी की ससुराल से या बेटी की प्रताड़ना संबंधी कोई चिट्ठी आती है तो उसे प्रमाण के लिए ज़रूर रखें।
— अगर बेटी पीड़ित होकर मायके आ जाए तो कार्यवाही करने में देरी न करें।
— लड़कियों व महिलाओं को क़ानूनी जानकारी देना ज़रूरी है।
— समाज द्वारा महिला अत्याचार कम करने और दोषी व्यक्ति को दंडित किया जाना चाहिए। जिस घर में एक बेटी की जिंदगी बर्बाद हुई हो उस घर में दूसरी बेटी न दें। बेटी का जीवन बर्बाद होने से बचाएं।
— लड़की के बारे में झूठी अफवाहें फैलाकर लड़की को मानसिक तकलीफ न दें। उसे भावी जीवन बनाने हेतु सहारा दें।
— लड़की को दुबारा विवाह करने की समाज की ओर से व्यवस्था होनी चाहिए।
— पहली पत्नी के रहते दूसरी शादी गैर क़ानूनी है। क़ानूनन दूसरी पत्नी की स्थिति रखैल की है।
— समाज की सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी यह बनती है कि वह ऐसी छोड़ी हुई लड़कियों के प्रति सहानुभूति दिखाए। ऐसे युवकों को प्रोत्साहित करें जो इन लड़कियों को अपनाने में पहल करें।

हमें यह भी ध्यान रखना है कि हम क्यों किसी दूसरी औरत को तकलीफ दें? किसी अन्य के बारे में कुछ कहने या करने से पहले सोचें कि ऐसा ही व्यवहार हमारे साथ या हमारी बहन, बेटी के साथ हो तो हम पर क्या बीतेगी।

साभार: साथिन रो कागद, बांसवाड़ा (राज.)

# हमें न समझो तुम अबला

हमें न समझो तुम अबला हमें न समझो दासी
हम हैं गौरव तुम सबके हम हैं मन के बासी
भोला भाला जीवन अपना काम सभी के आया
बहुत सुबह से देर शाम तक सब ने काम कराया
तुमनें न ला दीं किताबें न स्कूल पढ़ाया
हमनें जब पढ़ने की ठानी तो चूल्हा चौका थमाया
स्कूल जाते नन्हें मुन्हों को देख मेरा जी ललचाया
अब न चुप बैठेंगे हम यह तय हुआ हमारा
भैया के संग जाऊं पढ़ने पढ़ना लक्ष्य हमारा
ये है बेटा वह है बेटी इसको मत अपनाओ
दोनों ही हैं फूल चमन के इनको गुलज़ार बनाओ
पति-पत्नी और बेटा-बेटी के मतभेद मिटाओ
मानवता के बनो पुजारी, मानव धर्म अपनाओ
महिलाओं पर हो रही हिंसा अब तो रोक लगाओ

विद्या, महिला संस्थान
मऊरानीपुर

# औरत अकेली भी जी सकती है।

मेरा नाम बालो है। मैं भी तुम सबकी तरह एक औरत हूं जिसका जीवन दुख तकलीफ़ों से भरा रहा है। क्या-क्या नहीं सहा मैंने। सिर्फ़ इसलिए कि मेरी गृहस्थी बनी रहे। शायद तुम कहोगी इसमें कौन सी बड़ी बात है। हम सब रोज़ यही सहती हैं। खून के घूंट पीकर चुप रह जाती हैं।

"हां, बस यही फ़र्क है। मैं चुप नहीं रही और आज मेरी ज़िंदगी दुख तकलीफ़ों से आज़ाद है। इसीलिए तो मैं अपनी कहानी तुम सबको सुनाना चाहती हूं।"

### धोखे की शादी

मेरा मामा गोपाल का रिश्ता लेकर हमारे घर आया था। लड़का नौकरी करता है। यह सुन मां ने रिश्ता मंजूर कर लिया। मां और मामा दोनों को मालूम था कि गोपाल पहले ही शादीशुदा है। मां ने मेरे सुख-दुख की नहीं सोची। उसने तो सोचा अपने सिर से बोझ उतारूं। आगे जो होगा बालो आप सहेगी।

जब मुझे पता लगा कि ये लोग मुझे सौतन के घर में दे रहे हैं मैंने शादी से इंकार कर दिया। इस पर मामा ने कहा—

"अरी पगली, पहली पत्नी को तो उसने कब का छोड़ दिया। तुझे उसके साथ थोड़े ही रहना है।"

मां भी शादी करने के लिए मुझ पर दबाव डालने लगी। गोपाल ने भी झूठ बोला कि पहली

पत्नी उसके घर पर नहीं रहती।

घर और समाज का दबाव, मदद और सहारे की कमी के कारण मैंने शादी के लिए 'हां' कर दी। और करती भी क्या। हम सब अकेली कितनी असहाय महसूस करती हैं।

### नरक़ के दरवाज़े

शादी होते ही मेरे लिए नरक़ के दरवाज़े खुल गए। ससुराल पहुंचकर पता लगा कि मुझे सास और सौतन के साथ रहना है। गोपाल जिस गांव में नौकरी करता था वहां मुझे साथ नहीं ले गया। मैं रात-दिन खेत पर और घर में काम करती। उस पर सास और सौतन दोनों मुझे मारती-पीटतीं।

और गालियां देतीं।

तंग आकर एक दिन मैं गोपाल के गांव चली गई। वहां उसे अपनी पूरी राम कहानी सुनाई। लेकिन उसे जरा भी दया नहीं आई। उसने दोबारा मुझे अपनी मां के पास भेज दिया। इस बीच मेरा गर्भ ठहर गया।

एक तरफ़ पेट में बच्चा, दूसरी तरफ़ कमरतोड़ काम और मार-पीट। मुझे लगता था मैं नहीं बचूंगी। एक बार तो सास ने तीन दिन तक खाना नहीं दिया। मैं भूख से तड़पती रही।

सास और सौतन ने मिल कर मुझे ज़हर पिलाने की कोशिश की। मैंने लड़-झगड़ कर उनके हाथ से शीशी छीन कर दूर फेंक दी। मैंने शोर मचाया तो पड़ौस का देवर आ गया। सब गांववालों ने शीशी देखी। पंचायत बैठी, सबने थू थू की लेकिन मेरी किस्मत का कुछ फ़ैसला नहीं हुआ। सब कहने लगे इस परिवार में तो यह रोज़ का ही किस्सा है।

### लापरवाह समाज

कोई चोरी चकारी, धर्म-कर्म या मर्दों की लड़ाई हो तो पंच बीच में पड़ते हैं। जाति और समाज बीच में बोलता है। जब किसी औरत पर अत्याचार हो तो सबको सांप सूंघ जाता है। हर कोई उसे घरेलू मामला कह कर छोड़ देता है। जब पति और परिवार रक्षक के बदले भक्षक बन जाएं तब भी कोई कुछ नहीं बोलता। यही कारण है कि आज भी लाखों औरतें घर के भीतर मारी जा रही हैं।

### एक कोशिश और

मैंने एक बार फिर पति के पास जाकर सब सुनाया। उसके स्कूल के हैडमास्टर साहब से भी शिकायत की। सबने उसे समझाया, लेकिन उसे कहां समझ में आती। पेट में पांच महीने का गर्भ होने के बावजूद उसने मुझे खुब बेदर्दी से मारा।

खून से लथ-पथ बेहोश पड़ी थी तो गांव की किसी औरत ने मुझे अस्पताल पहुंचा दिया। जब पुलिस ने जांच पड़ताल की तो गोपाल ने डरा धमका कर मुझसे झूठ बुलवाया कि "मैं सीढ़ियों से गिर पड़ी थी।"

और क्या-क्या जुल्म हुए क्या बताऊं बहनों। जचकी के दर्दों के बीच मुझे मायके भेज दिया। यहां तक कि घर पहुंचते ही बच्चा हो गया। सब कहने लगे ससुराल वाले कैसे कसाई हैं।

पर मदद के लिए कोई आगे न बढ़ा। मां ने भी फिर ससुराल भेज दिया। गेंद की तरह लोगों की लातें खाती। कभी मायके तो कभी ससुराल भेज दी जाती। मेरा अपना कोई और ठिकाना नहीं था जहां मैं हक़ से, बिना किसी डर के रह पाती।।

### एक नया जीवन

मरियम नाम की एक औरत ने महिला जागृति केंद्र से मेरा परिचय करा दिया। उन्होंने मेरी बड़ी मदद की। पहले गोपाल को समझाया बुझाया। पुलिस की मदद भी ली। लेकिन जब भी मैंने शांति से उसके साथ रहने की कोशिश की वह मार-पीट करता रहा।

तब मैंने अलग रहने का फ़ैसला कर लिया। मैं घर जाकर अपना पूरा सामान ले आई। किराए पर घर लिया। खुद नौकरी करने लगी। अब घर बना लिया है और दो बच्चे पाल रही हूं। महिला जागृति केंद्र के सदस्यों की मदद से अब मुझ में हिम्मत आ गई है। अब किसी का डर नहीं। एक दूसरे की मदद करके संगठन बना कर ही हम ताक़तवर बन सकती हैं। सिर उठा कर जीना सीख सकती हैं। □

# औरतें अपने हकों के लिए जूझ रही हैं

सुहास कुमार

आज देश में जो नारी जागरूकता, नारी समस्याओं व नारी दृष्टिकोण के प्रति अधिक जागरूकता दिखाई देती है उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। 19वीं सदी के शुरू होने तक समाज में छुआछूत, सती-प्रथा, पर्दा-प्रथा, बाल-विवाह, स्त्रियों की शिक्षा व विधवा पुनर्विवाह पर रोक आदि बुराइयां गहरी जड़ पकड़ चुकी थीं। ऐसे समय में राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद जैसे महान सामाजिक नेता उभरे और उन्होंने उन बुराइयों का कड़ा विरोध किया।

### एक पड़ाव

19वीं सदी के मध्य में महाराष्ट्र के ज्योति बा फूले और उनकी पत्नी सावित्री बाई फूले ने लड़कियों की शिक्षा और विधवा पुनर्विवाह के लिए ठोस रचनात्मक कार्य किया। सावित्री बाई फूले पंद्रह दिन में एक बार विधवाओं की सभा बुलातीं जिसमें उनकी समस्याओं पर विचार किया जाता। ऐसी सोच बनाई जाती कि विधवाएं दुबारा ब्याह करें।

यह शायद देश का पहला महिला संगठन था और सावित्री बाई नारी मुक्ति आंदोलन की पहली नेता। वह अपने पति से शिक्षा लेकर पहली महिला शिक्षक बनीं। लड़कियों का पहला स्कूल खुला। स्त्री-शिक्षा आंदोलन धीरे-धीरे जोर पकड़ता गया और देश में कई स्कूल व कालिज खुले।

### महिला संगठनों की शुरुआत

बीसवीं सदी के शुरू में श्रीमती बी.एन. सेन की अध्यक्षता में भारत स्त्री महामंडल और डाक्टर एनी बेसेंट की अध्यक्षता में 'विमेंस इंडियन एसोसिएशन' बने। उस समय राष्ट्रीय सामाजिक सम्मेलन के अतंर्गत भी महिला समूह सक्रिय था, पर उसके अधिकांश नेता पुरुष थे। महिलाओं के अलग संगठन बनाने का विरोध हुआ। फिर भी यह संगठन सामाजिक बुराइयों जैसे बाल विवाह आदि के खिलाफ आवाज उठाते रहे।

'भारतीय जीवन में औरतों की स्थिति'—महारानी बड़ोदा की इस पुस्तक से महिला आंदोलन को बहुत बढ़ावा मिला। औरतों के सामाजिक और राजनैतिक अधिकारों के लिए आवाज उठाई जाने लगी। उनके लिए न केवल वोट का अधिकार, बल्कि नगरपालिकाओं और विधान सभाओं में प्रतिनिधित्व की मांग की जाने लगी। ब्याह की आयु बढ़ाने, देवदासी प्रथा का खात्मा, हिंदू स्त्री का अपने पति की संपत्ति में अधिकार आदि की मांग भी उठनी शुरू हुई।

'अखिल भारतीय महिला कांफ्रेंस' 1927 में

बनी। इसका उद्देश्य सिर्फ स्त्रियों से संबंधित शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक मसलों पर स्त्री हितों के लिए काम करना था।

इन सभी संगठनों की सदस्य आमतौर से उच्च सामाजिक वर्ग की स्त्रियां थीं। शायद इसी कारण इन संगठनों का रवैया संघर्षात्मक नहीं रहा।

## नई दिशा

1930 के दशक में आज़ादी की लड़ाई ने जोर पकड़ा। गांधी जी के आह्वान पर समाज के लगभग सभी वर्गों की औरतें घरों से बाहर निकलीं। उन्होंने इस लड़ाई में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर भाग लिया।

आजादी के बाद जागरूक औरतों ने अपने अधिकारों की लड़ाई जारी रखी। औरतों के जीवन पर बुरा असर डालने वाले सामाजिक रीति-रिवाजों के खिलाफ़ सामूहिक आवाज उठाई गई। स्त्रियों को पुरुषों के बराबर के अधिकार, बराबर का दर्जा और प्रगति के बराबर के अवसरों की मांग की गई।

दो जुझारू महिला संगठन बने। 1954 में 'नेशनल फेडरेशन ऑफ इंडियन विमेन' और 1959 में 'समाजवादी महिला सभा' जैसे संगठन शुरू हुए।

## किसान व मजदूर औरतों का संघर्ष

मिलों, फैक्टरियों, चाय बागानों, खेत-खलिहानों की औरतों की लड़ाई उनकी जिंदगी से जुड़े मुद्दों से संबंधित रही। न्यूनतम मजदूरी, काम के घंटों की सीमा, पालना घर, जीवन की न्यूनतम सुविधाएं आदि मुद्दों पर किसान व मजदूर औरतों की लड़ाई केंद्रित रही। वे पुरुष मजदूरों व किसानों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर अपने हकों के लिए लड़ीं।

डेंगुआझर के चाय बागान की मजदूरनी मैली छेत्री ने 1946 में एक यूनियन बनाई और लगभग 1,800 मजदूर औरतों का नेतृत्व किया। तेलंगाना संघर्ष में भी औरतों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और पुरुषों के साथ मिलकर विरोध प्रदर्शनों में भाग लिया। खेतिहर मजदूरों की हड़तालों में भी उन्होंने बड़ी संख्या में भाग लिया। जमींदारों के गल्ले पर कब्जा करने के संघर्ष में हिस्सा लेकर उन्हें दो-तीन सेर की बजाय चार सेर अनाज की मजदूरी देने पर मजबूर किया।

सूर्यपेट (तेलंगाना) संघर्ष में जैसा हुआ वह पहले कभी नहीं देखा गया। एक ओर औरतें निहत्थी थीं, दूसरी ओर सेना के जवान उन्हें बंदूकों के कुंदों से मार रहे थे। लगभग 8000 मज़दूर औरतों का संगठन एक किसान की बेटी सूर्यवती ने बनाया।

1960 के दशक में कम्युनिस्ट पार्टी ने मज़दूर महिलाओं को संगठित किया। ट्रेड यूनियनों में उनकी भागीदारी बढ़ी। केरल, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र और तामिलनाडू में वे विशेष रूप से सक्रिय हुईं। नक्सलबाड़ी आंदोलन ने जोर पकड़ा जिसमें आंध्र प्रदेश, बिहार, केरल और पश्चिम बंगाल की औरतों ने सक्रिय भाग लिया। उनका संघर्ष आर्थिक शोषण के खिलाफ था। सामाजिक

बुराइयों जैसे दहेज, मारपीट और यौन हिंसा आदि मुद्दों को नहीं उठाया गया

## संघर्ष का फैलाव

1970 के दशक तक महिला आंदोलन में परिपक्वता दिखाई देने लगी। देश के कोने-कोने में महिला संगठन बने और नारी जीवन से जुड़े अनेक मुद्दों को उठाया जाने लगा। मंहगाई, राशन की कालाबाजारी, मिलावट, पानी की कमी से लेकर दहेज, पारिवारिक व यौन हिंसा और बलात्कार आदि मुद्दों पर जोरदार आवाज उठाई गई। धरनों, रैलियों और जलूसों में हजारों की संख्या में औरतें भाग लेने लगीं। मंहगाई के खिलाफ महाराष्ट्र में हजारों स्त्रियां थाली, बेलन और झाड़ू लेकर सड़कों पर निकल आईं।

दहेज के खिलाफ दहेज-विरोधी चेतना मंच और कई अन्य संगठनों ने कानून को और सख्त बनाने की मांग रखी। जगह-जगह प्रदर्शन हुए। दहेज कानून में संशोधन हुआ। दहेज और पारिवारिक हिंसा से पीड़ित औरतों की सुनवाई के लिए कई शहरों में विशेष पुलिस इकाइयां बनीं।

मथुरा बलात्कार मामले को लेकर महिला संगठनों ने जमकर संघर्ष किया। 14 साल की आदिवासी लड़की मथुरा का पुलिस थाने में बलात्कार किया गया। अपराधी अदालत से छूट गए। पर समूचे देश में औरतों ने मिलकर प्रदर्शन किए और खुलकर पुलिस के रवैये और अदालत के फ़ैसले का विरोध किया। इसी तरह के कुछ अन्य मामलों में महिला संगठनों ने संघर्ष जारी रखा। फलस्वरूप बलात्कार कानून में सुधार हुआ और उसे ज्यादा सख्त बनाया गया।

सामाजिक मुद्दों के साथ-साथ औरतों ने

रोजमर्रा की दिक्कतों के खिलाफ भी आंदोलन चलाए। इनमें महत्वपूर्ण है 'चिपको आंदोलन'। पहाड़ी क्षेत्रों में जलावन की लकड़ी इकट्ठा करने औरतों को मीलों चलना पड़ता है। ऊपर से ठेकेदारों ने जंगलात के पेड़ काटने का लाइसेंस ले लिया। उत्तर प्रदेश के पहाड़ी जिलों की औरतों ने इन ठेकेदारों और सरकारी कर्मचारियों के खिलाफ लड़ाई छेड़ दी। सरकारी अफसरों ने पुरुषों को तो डरा-धमका कर पेड़ काटने के लिए राजी कर लिया, लेकिन औरतें अपने फैसले पर डटी रहीं। फरवरी 1978 की बात है। निहत्थी और अनपढ़ औरतें पेड़ों को अपनी बाहों में घेर कर खड़ी हो गईं। औरतें मानो पेड़ों से चिपक ही गईं। कुल्हाड़ी व आरों से लैस ठेकेदार के आदमियों को पुलिस की मदद के बावजूद पीछे हटना पड़ा।

अहमदाबाद (गुजरात) में सब्जी बेचने वाली, छोटे-मोटे रोजगारों से जुड़ी और मजदूर औरतों को

संगठित किया 'सेवा' संस्था ने। पटरी पर सामान बेचने वाली औरतों को आए दिन म्युनिसिपल कमेटी के कर्मचारी तंग करते। कभी उनका सामान उठा ले गए तो कभी वहीं फेंक दिया। औरतों को सामान खरीदने के लिए धन की भी बहुत दिक्कत होती। मजदूर औरतों की दिक्कतें और भी ज्यादा थीं। इन सब दिक्कतों को सुलझाया 'सेवा' संस्था ने और औरतों को उचित सुविधाएं देने के लिए सरकारी तंत्र से संघर्ष भी किया।

### पश्चिमी देशों का असर

हमारे देश की पढ़ी-लिखी महिलाएं पश्चिमी देशों के महिला आंदोलनों से भी प्रभावित हुईं। स्त्री को पूर्ण इंसान का दर्जा न देकर 'वस्तु' मानने के खिलाफ अभियान शुरू हुए। शुरू में उनका मजाक भी उड़ाया गया। पुरुष-विरोधी होने के लिए उनकी निंदा की गई। यह भी कहा गया कि बदसूरत या असफल औरतें हीं इस आंदोलन की अगुवा हैं। पर महिला संगठन बनते गए। गरीबों व दलितों के शोषण के खिलाफ आवाज उठाने वाले संगठन भी महिलाओं के शोषण व उत्पीड़न के विरोध में सक्रिय भागीदार बने।

जब संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1975 में महिला दशक घोषित किया तो अनेक महिला संगठनों ने जन्म लिया। इन संगठनों ने विशेष रूप से जागरूकता अभियान चलाए, पत्रिकाएं प्रकाशित कीं और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के ज़रिए सामाजिक सोच बदलने पर जोर दिया। बंबई के स्त्री मुक्ति संगठन ने महिला मुक्ति संबंधी गानों व नाटकों की रचना की और प्रदर्शन किए। महाराष्ट्र के ही 'पुरोगामी स्त्री संगठन' ने द्विमासिक पत्रिका 'बेजा' प्रकाशित की जिसमें फिल्मों में औरतों के शरीर के प्रदर्शन के खिलाफ आवाज उठाई। समाजवादी महिला संगठन ने मुख्य रूप से 'नारीवाद' पर चर्चा शुरू की।

महिलाओं को एक दूसरे के कामों की जानकारी देने और समाज का औरतों के प्रति सही नज़रिया तैयार करने के लिए कई मंच बने, कार्यशालाएं हुईं और पत्र-पत्रिकाएं निकलीं। संगठनों की श्रृंखला बढ़ती गई।

दिल्ली में 'महिला दक्षता समिति' व 'स्त्री संघर्ष' दो संगठन बने। महिलाओं के उत्पीड़न के खिलाफ एक साझा मंच बना जिसकी ज्यादातर सदस्याएं पढ़ी-लिखी और मध्यम वर्ग की थीं। अलग-अलग राज्यों में भी महिला संगठनों ने आवाज उठाई। 'छत्तीसगढ़ महिला जागृति संगठन' व 'महिला मुक्ति मोर्चा' (मध्य प्रदेश) और 'महिला जागृति केंद्र' (बिहार) ने आदिवासी व अन्य महिलाओं को संगठित किया।

कई सरकारी कार्यक्रमों ने भी महिला आंदोलन को बल दिया। राजस्थान में महिला विकास योजना और उत्तर प्रदेश, गुजरात व कर्नाटक में महिला सामाख्या योजना ने ग्रामीण महिलाओं में उत्साह की नई लहर पैदा की। साक्षरता कार्यक्रम से आंध्र प्रदेश के नैल्लोर जिले की नवसाक्षर बहनों ने एक नये आंदोलन की शुरुआत की—शराब का विरोध। यह आंदोलन अन्य राज्यों में भी तेजी से फैल रहा है और इसकी अगुवानी कर रही हैं औरतें।

### आत्मविश्वास बढ़ा

महिला आंदोलन का ही नतीजा है कि आम जनता में उनके नज़रिये के प्रति जागरूकता आई है और स्वयं उनमें नया आत्मविश्वास। आज हर

## नया कानून

हिंदू विवाह अधिनियम ने औरतों को अधिक अधिकार दिए। अधिनियम के खास मुद्दे हैं—

विधवा दूसरा ब्याह कर सकती है।

बाल-विवाह अपराध माना गया। ब्याह के समय लड़की की उम्र कम से कम 18 साल और लड़के की 21 साल होनी चाहिए

यदि पति नामर्द है और शादी परिपूर्ण नहीं हुई है तो पत्नी अदालत से ब्याह को रद्द करा सकती है।

पहली पत्नी की मौजूदगी छिपाई गई हो तो दूसरी पत्नी पति के खिलाफ मुकदमा दायर कर सकती है और पति से मुआवजा व गुजारा पा सकती है।

अगर बिना किसी ठोस कारण पति पत्नी को छोड़ देता है या साथ रहकर भी विवाहित जीवन पूरा नहीं करता तो अदालत पति को आदेश दे सकती है कि वह अपने कर्त्तव्य निभाए।

### तलाक-संबंधी सुधार

हिंदू तलाकशुदा या छोड़ी हुई स्त्री को पति से गुजारा-भत्ता पाने का कानूनी हक है। तलाक की कार्यवाही का खर्च भी पति देगा।

सात साल की उम्र तक बच्चे को रखने का मां का कानूनी हक है। अगर मां की कोई आमदनी नहीं है तो बच्चे का खर्च पिता देगा।

---

ओर लड़कियों के प्रति भेदभाव का जोरदार विरोध हो रहा है। गलत कानूनों को चुनौतियां दी जा रही हैं। औरतों को स्वयं महसूस हुआ है कि वे अपना भाग्य काफी हद तक स्वयं बना सकती हैं। □

कानून में दिए हालातों में पत्नी भी पति से तलाक ले सकती है।

### संपत्ति-संबंधी हक

औरत अपने पति की संपत्ति में हिस्सा पाने की हकदार है। उस संपत्ति का वह अपनी मनमर्जी उपयोग व वसीयत कर सकती है।

औरत का अपनी कमाई पर पूरा हक है।

औरत को अपने माता-पिता या दूसरे रिश्तेदारों से भी संपत्ति में हिस्सा मिल सकता है।

अगर कोई व्यक्ति बिना वसीयत मर जाता है तो उसकी संपत्ति उसके बेटों, बेटियों, पत्नी और मां में बराबर-बराबर बंटेगी। पर यह व्यवस्था बाप-दादा की संपत्ति पर लागू नहीं है। □

# उठूंगी बनकर आंधी

उठूंगी बनकर आंधी
उखाड़ूंगी सदियों पुराने विचारों के पेड़
बढ़ूंगी तेज़ रफ्तार से आगे
करूंगी तहस-नहस
उन दकियानूसी रीति रिवाज़ों की इमारतों को
रोकते हैं जो मेरा विकास
और फिर बरसूंगी
बनकर शीतल पानी
होगा नया विश्व निर्माण
ऐसा विश्व जिसे होगा अहसास
मेरे वजूद, मेरे अधिकारों का
मेरे अहम्, मेरी इच्छाओं का

—रश्मि स्वरूप जौहरी

# संकुचित नज़रिया छोड़ें

—मुकुल लाल

स्वामी विवेकानंद ने कहा था "स्त्रियों की अवस्था में सुधार हुए बिना विश्व का कल्याण नहीं हो सकता। पंछी एक पंख से उड़ नहीं सकता।"

आज स्त्रियों को एक बहुत ही अन्यायपूर्ण और असुरक्षित वातावरण में रहना पड़ रहा है। इसके लिए जिम्मेदार कौन है? स्वयं नारी, सामाजिक व्यवस्था या प्रशासन? नारी के ऊपर एक बड़ी

जिम्मेदारी है। सारी अव्यवस्थाएं घर से ही शुरू होती हैं। अपने पिछड़ेपन और ग़लत सोच की वजह से वह असल कारणों की खोज ही नहीं करती है। दूर करना तो बहुत बड़ी बात है।

भ्रूणहत्या, कन्या-शिशु की हत्या, दहेज़-हत्या, नारी स्वयं अपने को ही मिटाने पर तुली है! आज के सामाजिक वातावरण ने बेटियों को परिवार का अनचाहा सदस्य बना दिया है। यह सिलसिला ज़ारी रहा तो जल्दी ही प्राकृतिक संतुलन बिगड़ेगा और इसके सामाजिक परिणाम बुरे होंगें। जीने का

अधिकार हर इंसान का एक बुनियादी मानव अधिकार है, दुनिया का कोई क़ानून इसकी इजाज़त नहीं देता।

मांएं सोचती हैं बेटा कुलदीपक है, बुढ़ापे का सहारा है। लड़की पराई अमानत और बोझ। इस सबसे लड़कियों में शुरू से ही एक हीन-भावना पैदा हो जाती है। उन्हें लज्जाशील, सुशील, कम बोलने वाली और सहनशील नारी के सांचे में ऐसे ढालते हैं कि वे हमेशा पुरुष की बैसाखियों के सहारे चलने को मजबूर हो जाती हैं। न तो वे अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों से लड़ने लायक रहती हैं, न अपने पैरों पर खड़ी हो पाती हैं। उन्हें आत्मनिर्भर बनाने के लिए उचित शिक्षा व तकनीकी योग्यता हासिल करने के मौके ही कहां दिए जाते हैं।

## संकुचित दृष्टिकोण

मर्दों से पर्दा व परहेज की शिक्षा इस हद तक दी जाती है कि वे उनके साथ सहज नहीं हो पाती हैं। उन्हें सच्चा मित्र या सहयोगी न मानकर हव्वा मान बैठती हैं। इससे अनेक संकुचित मान्यताओं का जन्म होता है। स्वस्थ सामाजिक संबंधों का विकास नहीं हो पाता। यह एक बहुत दकियानूसी और छिछला दृष्टिकोण है कि घर से बाहर हमें भाई, पिता व मित्रवत सहयोग नहीं मिल सकता। इस सोच ने नारी को घर की चारदीवारी और पर्दे के पीछे घुटने को मजबूर कर दिया है।

केवल बेटियों की मां को निरवंश व अपशगुनी होने के ताने सुनने पड़ते हैं। बेटी की मां होने के नाते उसे कोई मान-सम्मान नहीं मिलता। चाहे बेटी कितनी ही गुणी क्यों न हो। आज कानून कहता है कि बूढ़े माता-पिता की देखभाल की ज़िम्मेदारी लड़की की भी है। तो भी हम बेटे-बहू के साथ उपेक्षित, कभी-कभी असम्मानित जीवन बिताना पसंद करते हैं। बेटी-दामाद के घर में हमें ज़्यादा मान-सम्मान मिले, तब भी हम वहां रहना नहीं चाहते। बेटे के रहते बेटी के यहां रहना हीन समझा जाता है। ऐसा है हमारे समाज का नज़रिया।

भारत की 80 फ़ीसदी जनता गांवों में बसती है। वहां महिलाओं की स्थिति और भी खराब है। ऐसे माहौल में अगर कोई महिला आगे बढ़ती है और कुरीतियों व नारी-शोषण के खिलाफ जेहाद छेड़ती है तो उसे चरित्रहीन, कुलटा क़रार दिया जाता है। उसको एक असामाजिक तत्व मानकर उसकी कड़ी आलोचना की जाती है।

## नया नज़रिया जरूरी

आज हमें अपने चारों ओर के माहौल को नए नज़रिए से देखने की ज़रूरत है। क्या लड़कियां पढ़ लिख कर मान-सम्मान नहीं पाती हैं? यदि वे सुयोग्य निकलती हैं तो क्या परिवार और देश का गौरव नहीं बढ़ातीं हैं? क्या बेटियों से खानदान रौशन नहीं होता? आज जब अवसर मिल रहे हैं तो महिलाओं ने दिखा दिया है कि वे किसी से कम नहीं हैं। अब सेना व नौसेना में भी महिलाएं शामिल हो रहीं हैं। उन्हें भी उन्हीं कड़े प्रशिक्षणों के दौर से गुज़रना होता है जितना कि उनके पुरुष साथियों को।

## मनोबल जरूरी

समानता और खोई प्रतिष्ठा पाने के लिए औरतों को आत्मविश्वास जगाना होगा। अपने मनोबल को बढ़ाना होगा। इसके लिए पहल परिवार के भीतर से करनी होगी। कुलदीपक और गृहलक्ष्मी को सहयोग व समानता की शिक्षा देनी होगी। हमें इस विश्वास के साथ आगे बढ़ना है कि नारी-शोषण व अन्याय को आने वाली पीढ़ी एक बुरे सपने की तरह याद करेगी। □

## कौन कहता है कमज़ोर हूं मैं

मैं एक औरत हूं
बेटी, पत्नी, मां हूं
पर मैं "मैं" भी हूं
उज्जवल मेरा रूप है
ममता मेरा कार्य है
सेवा मेरा धर्म है
चांद सी शीतल हूं
तो सूर्य सी ज्योतिमय भी हूं
इस सृष्टि का आधार हूं मैं
कौन कहता है कमज़ोर हूं मैं

—आदर्श सभलोक

# मंगल कामना सिर्फ पुरुष के लिए!

रश्मि स्वरूप जौहरी

कुछ दिन पहले मेरी एक सहेली की पैर की उंगली की हड्डी टूट गई। उसी में वह बिछुआ पहने थी। डाक्टर के कहने पर जैसे ही वह बिछुआ उतारने लगी उसके पास खड़ी उसकी सास बोल पड़ी, "अरे बिछुआ न उतारो, अपशगुन होता है।"

एक बार हमारे घर काम करने वाली महरी की लड़की के गले में दाने हो गए। वह स्टील की चेन पहने थी जिससे दाने छिल-छिल जाते थे। जब लड़की ने चेन उतारनी चाही तो मां ने टोका, "अरे अभागिन, भाई का क्यों बुरा करे है।"

बचपन से ही लड़की यह सब सुनने की आदी हो जाती है।

"अरी, गले में कुछ पहन लो, नंगा गला बाप चाचा का बुरा करता है।"

"क्यों भाई की जान के पीछे है। हाथ में दो चूड़ी डाल ले।"

"अरे, मंगलसूत्र उतार दिया? क्या खसम खाने का इरादा है?"

### कीमती पुरुष

यह ताने जाने-अनजाने उसे समझा देते हैं कि उसकी अपनी कोई कीमत नहीं है। उसे पिता, भाई और पति के मंगल के लिए ही खास कुछ करना है। उसके भाई को ऐसा कुछ नहीं करना पड़ता। वह स्वयं को अपने भाई से नीचा समझने लगती है।

बचपन से ही लड़की देखती है कि मां सुहाग चिन्ह धारण करती है। पिता की दीर्घायु के लिए व्रत उपवास करती है। पिता यानि पति अपनी पत्नी के लिए ऐसा कुछ नहीं करता। लड़की जान जाती है कि घर के पुरुषों का दर्जा स्त्रियों से ऊंचा है। एक लड़की से मां, बहन या भाभी की मंगल कामना के लिए कुछ करने को नहीं कहा जाता है।

### सामाजिक बंधन

औरत चाहे कुंवारी हो, सधवा या विधवा, अपनी मर्जी से पहन-ओढ़ नहीं सकती। अगर सुहाग चिन्ह लाभदायक हैं तो पति क्यों नहीं पत्नी के लिए इन्हें धारण करता। पर नहीं, वह तो आजाद प्राणी है। उसके लिए ऐसा कोई सामाजिक रीति रिवाज नहीं है।

कितना भयानक और दर्दनाक होता है जब किसी की चूड़ियां तोड़ी जाती हैं। बिंदी मिटाई जाती है। सूनी मांग, सूना माथा, सूनी कलाई। विधवा के क्लेश का क्या पुरुष अंदाज़ा लगा सकता है? अगर यह सब चिन्ह पहनने सधवा के लिए ज़रूरी न हों तो इन्हें उतारने का सवाल ही नहीं उठता। मानसिक क्लेश और तो न बढ़ता।

मरने के बाद भी रीति रिवाज़ पीछा नहीं छोड़ते। सुहागिन मरे तो उसके भाग्य को सराहा जाता है। चाहे विवाहित जीवन में उसने दुख ही दुख झेले हों, सधवा स्त्री का दाह-संस्कार पूरे साज श्रंगार के साथ धूमधाम से किया जाता है।

### लीक पीटना

सुहाग चिन्ह व भाई, पिता और पति की सुरक्षा के लिए गहने पहनने का उनकी लंबी उम्र से कोई संबंध नहीं है। न ही इनके पहनने, न पहनने से कोई अपशगुन होता है। जीवन-मृत्यु जिंदगी की

वास्तविकता है। जिसने जन्म लिया है वह मरेगा भी। जो औरतें सब सुहाग चिन्ह पहनती हैं, पति की लंबी उम्र के लिए व्रत-उपवास करती हैं उनके पति की मृत्यु क्या उनसे पहले कभी नहीं होती?

यह सब रिवाज़ औरत-मर्द में भेदभाव करते हैं। औरतों पर पाबंदी लगाते हैं कि वे अपनी मर्जी से सज-संवर भी न सकें। औरतें यह कभी न सोचें कि मर्दों के मुकाबले उनका जीवन कम कीमत रखता है। □

## पितृसत्तात्मक समाज का ढांचा

इसमें परिवार का मुखिया पिता होता है। सभी फैसले वही करता है। स्त्री ज़्यादा से ज़्यादा सिर्फ राय दे सकती है। परिवार के सभी सदस्यों की उसके प्रति जवाबदेही होती है। बच्चों की पढ़ाई-लिखाई, शादी-ब्याह, परिवार-नियोजन, संपत्ति की खरीद-फरोख्त आदि फैसले वही लेता है। स्त्रियां और बच्चे एक प्रकार से उसकी दासता का जीवन बिताते हैं। लड़कों को और लोगों के मुकाबले में ज़्यादा अधिकार मिले होते हैं।

पिता पक्ष के संबंधियों को मां के संबंधियों से ज़्यादा ऊंचा दर्जा मिला होता है। सास-ससुर, जेठ-जिठानी, ननद पितृसत्ता के प्रतिनिधि होते हैं। इन सबको बहू के ऊपर शासन करने का समाज से हक़ मिला हुआ है।

स्त्रियों की मेहनत को घरेलू करार कर किसी गिनती में नहीं लिया जाता। पुरुष कमाऊ श्रेणी में रखा जाता है। उसे विशेष सम्मान दिया जाता है। स्त्री कमा भी रही हो तो भी गृहणी होना ही उसका प्रथम स्थान है और दोहरी चक्की में पिसने के बाद भी कोई सम्मान या फैसला लेने का अधिकार उसे नहीं मिलता है।

—सुहास कुमार

## पढ़कर बहुत कुछ करना है

मैं लड़की हूं, मुझे पढ़ना है
पिता कहते हैं तू लड़की है
तुझे पढ़कर क्या करना है

मां कहती है तू लड़की है
तुझे पराए घर जाना है
घर का काम ही तो करना है
कुछ रीति-रिवाजों को समझना है
फिर पढ़-लिखकर क्या करना है

मैं कहती हूं
पर मुझे तो पढ़ना है
रीति-रिवाज बदलना है
अपने को भी तो समझना है
जोर जुल्म से बचना है
कानून को समझना है
उसे अच्छी तरह परखना है
अपने भरोसे पर रहना है
मुझे दर-दर नहीं भटकना है
इसीलिए मुझे पढ़ना है
मैं लड़की हूं, तभी तो पढ़ना है
पढ़कर बहुत कुछ करना है
इस समाज को बदलना है

शैल अग्रवाल

## अंधविश्वास

# दिशाशूल—जिंदगी भर का शूल

बालकृष्ण श्रीवास्तव

आए दिन पाखंडों और अंधविश्वासों की पोल खुल जाने के बावजूद अंधविश्वास और पाखंड की घटनाएं घटती रहती हैं। इंसानी स्वभाव में पनपी डर की भावना ही अंधविश्वासों को बल देती है और बगुले की तरह एक टांग पर खड़े पंडित-पुरोहित और ओझा मौके का फायदा उठाने से जरा नहीं चूकते। जब इंसान का भ्रम खोखली और झूठी आस्थाओं से हटता है तब तक अवसरवादी अपनी झोलियां भर कर किनारे हो जाते हैं। ऐसे ही एक मौके का फायदा उठा कर पुरोहितों ने पड़ौस के गांव के मांगीराम को कहीं का न रखा।

मांगीराम धार्मिक प्रवृति का व्यक्ति था। उसका कोई काम पंडित-पुरोहित के दिशा निर्देश के बिना नहीं होता था। उसकी घरवाली पति से चार हाथ आगे थी। सप्ताह में चार दिन व्रत रखना और कथा, पूजा-पाठ व धार्मिक अनुष्ठानों के प्रति उसका गहरा विश्वास था। आए दिन उसके घर पंडितों-पुरोहितों की भीड़ दान-पुण्य और व्रत अनुष्ठान में लगी रहती।

मांगीराम ने अपनी घरवाली के कामों में कभी रोक-टोक नहीं की, बल्कि वह प्रसन्न रहता था कि धर्म के कामों से धन, संपदा और मोक्ष सब कुछ मिल जाता है। वह सीधा-साधा किसान खेत में साल भर कमर तोड़ मेहनत करता पर कुछ ठलुए धर्म के नाम पर उसके माल को उड़ा लेते। यह बात कभी उसके दिमाग में नहीं आई।

### पुरोहित ने बहकाया

पिछले साल जमीन के बारे में मांगीराम का झगड़ा गांव के एक व्यक्ति से हो गया। जमीन मांगीराम की भी नहीं थी। मामला गांव पंचायत में गया, जहां फैसला दोनों की बराबर हिस्सेदारी में हुआ। मांगीराम को यह मंजूर नहीं था। उसने अपने खानदानी पुरोहित से सलाह ली। पुरोहित जी तो इसी ताक में थे। उन्होंने तुरंत पत्रा देखकर बताया कि ऊपर की अदालत में जाओ, वहां तुम्हारी जीत होगी। असल बात यह थी कि उस भूमि को काफी दिन से दूसरा किसान जोत-बो रहा था और वह मांगीराम का पट्टीदार था। इसलिए पंचायत ने जो फैसला किया वह मांगीराम के हक में ही था, पर मांगीराम पूरी जमीन लेना चाहता था।

पुरोहित के कहने पर मांगीराम ने बड़ी अदालत में अपील कर दी। मुकदमा शुरू हो गया। पुरोहितों-पंडितों ने अपने जाल फैलाने शुरू कर दिए। आए दिन हवन, जप और कथा मांगीराम के घर शुरू हो गए।

मांगीराम की जब भी पेशी पड़ती वह एक दिन पहले पंडित जी से साइत निकलवाने जाता कि कल की यात्रा कैसी रहेगी। पंडित जी पत्रा देख कर मांगीराम से कहते कि कल की यात्रा शुभ है, कोई दिशाशूल नहीं है। दिशाशूल में यात्रा अनिष्ट लाती है। मांगीराम दान-दक्षिणा देकर दूसरे दिन तारीख पर जाता। धीरे-धीरे चक्कर लगाते एक साल बीत गया। दीवानी मुकदमा जो था।

मांगीराम के घर आए-दिन व्रत हुआ करते थे। सब गांववाले उससे वाकिफ थे। इसका फायदा मांगीराम के पट्टीदार ने उठाया। एक दिन वह सुबह-सुबह पुरोहित के घर पहुंच गया। दूसरे दिन की पेशी में मांगीराम और उसके गवाहों के बयान थे। पुरोहित ने मांगीराम के पट्टीदार को अपने दर्वाजे देखा तो मन ही मन उसके पेट में लड्डू फूटने लगे। अभी मांगीराम ही उसका 'जजमान' था, अब दूसरा भी आ गया।

### मांगीराम से धोखा

पुरोहित जी ने पट्टीदार से आने का कारण पूछा। पट्टीदार बोला—"पंडित जी। यदि मांगीराम कल अदालत न जाए तो मैं पचास रुपये दक्षिणा दे दूंगा।" पंडित जी को और क्या चाहिए था। अंधा मांगे दो आंखें।

उन्होंने पट्टीदार से कहा—"जजमान! तुम चिंता मत करो। कल मांगीराम अदालत नहीं जाएगा। आज शाम जब वह मेरे पास आएगा तब मैं उसे समझा दूंगा कि कल यात्रा का जोग नहीं बन रहा है, दिशाशूल है।" पट्टीदार ने काम बन जाने के बाद अदालत से लौट आने के तुरंत बाद दक्षिणा देने का वादा किया और पुरोहित के चरण स्पर्श कर अपने घर लौट गया।

सदा की तरह उस दिन भी मांगीराम यात्रा की तिथि, जोग, दिशाशूल पूछने शाम को पंडित जी के पास आया। उन्होंने पत्रा खोला और गंभीर मुद्रा में कुछ सोचने लगे। मांगीराम घबरा उठा कि आज क्या बात है जो पंडित जी सोच रहे हैं। उसने डरते-डरते पूछा—"क्या बात है, महाराज?"

पंडित थोड़ी देर मांगीराम को देखता रहा। फिर बोला—"जजमान! अनिष्ट, भारी ग्रहदशा है। कल दिशाशूल पड़ रहा है, इसलिए अनिष्ट की संपूर्ण संभावना है।"

मांगीराम कांप उठा और सोच में पड़ गया, क्योंकि अदालत में कल की हाजिरी निहायत जरूरी थी। वह यह सोच ही रहा था कि पंडित जी फिर बोले—"जजमान! घबराने या सोचने की कोई बात नहीं। दिशाशूल होने से तुम्हारी यात्रा कल संभव नहीं है, पर तुम चिंता मत करो। मैं कल दिन भर तुम्हारे यहां हवन कराऊंगा और तुम व्रत रखना। सब ग्रह टल जाएंगे और अनिष्ट भी खत्म हो जाएगा। तुम परसों यात्रा करना।"

अंधविश्वासी और पंडित के प्रति आस्थावान व धर्मभीरु मांगीराम दूसरे दिन अदालत नहीं गया, क्योंकि दिशाशूल का डर था। उसने घर रह कर ही पत्नी सहित व्रत रखा और हवन कराया और स्वयं भूखे रह कर पुरोहित को माल-पुए खिलाए जिससे अनिष्ट टल जाए।

### मांगीराम को अक्ल आई

पट्टीदार की युक्ति रंग लाई और उसके वकील ने बहस कर मुकदमे को उसके पक्ष में ला दिया। वह खुशी-खुशी शाम को घर लौटा और उसने पंडित को वादे के मुताबिक दान-दक्षिणा दे दी और आतिशबाजी व गोले भी छुड़ाए।

मांगीराम का दिल धड़का। ऐसी कौन सी बात हो गई कि उसका पट्टीदार आतिशबाजी छुड़ा रहा है। बड़ी बेसब्री और परेशानी में वह रात कटी। सुबह होते ही वह अदालत जा पहुंचा। अभी वकील आदि कोई नहीं आया था। वह थोड़ी देर बैठा रहा, पर बेचैनी ने उसे बैठने नहीं दिया और वह अपने वकील के घर पहुंचा। वकील ने देखते ही मांगीराम को आड़े हाथों लिया और कल न

आने का कारण पुछा।

मांगीराम ने बताया कि पंडित जी ने कहा था कि 'दिशाशूल' है, इसलिए यात्रा करना ठीक नहीं है। यह सुन वकील साहब ने अपना माथा पीट लिया और झल्लाकर बोले—"आखिर तुम गंवार ही रहे। सब कुछ बना बनाया चौपट कर दिया।" उन्होंने मुकदमे के बारे में बताया कि वह विपक्षी के पक्ष में चला गया। अब आगे अपील करनी पड़ेगी।

मांगीराम के हाथों के तोते उड़ गए। उसे कुछ नहीं सूझ रहा था। हजारों रुपये अदालत में फूंके, चक्कर काटे, दान-दक्षिणा दी और सब स्वाहा हो गया। वह सिर पकड़ कर बैठ गया। वकील ने उसे तसल्ली देते हुए कहा कि जो भूल हो गई वह हो गई। अब जिंदगी में ऐसी भूल न करना। यह दिशाशूल, जोग, पत्रा सब पंडितों-पुजारियों की लूटने की चाले हैं जिनमें तुम्हारे जैसे भोले-भाले किसान भाई फंस जाते हैं।

मांगीराम ने वहीं वकील साहब के सामने कसम खाई और अपील कर दी। तब से मांगीराम अंधविश्वासों का सबसे बड़ा विरोधी बन गया है। वह कहीं पंडितों-पुरोहितों का पाखंड या अंधविश्वास फैला देखता है तो डट कर विरोध करता है और अपनी कहानी सुनाता है। □

# नई दिशाएं, नए कदम

**पत्थरों को तोड़ा है, पर्वतों को फोड़ा है।**
**बनाया मकान हमने, ईंट लहू को जोड़ा है।**

मौका मिले तो वे क्या नहीं कर सकतीं? इसे साबित कर दिखाया है पुद्दूकोट्टाई (तामिलनाडू) की गरीब, पिछड़े वर्ग और अनुसूचित जाति की महिलाओं ने। 1991 में इन महिलाओं को 170 पत्थर की खदानों का ठेका दिया गया। पहले यह खदानें ठेकेदारों के हाथ में थी और वे यहां मज़दूरी का काम करती थीं। यह क्रांतिकारी कदम उठाया ज़िला महिला कलेक्टर श्रीमती शीला रानी ने।

लगभग 20, कहीं-कहीं कुछ ज़्यादा महिलाओं के समूह बनाए गए। संगठन को पंजीकृत तो कराया गया लेकिन सहकारी समिति नहीं बनाई गईं। सहकारी समिति बनाने का मतलब होता सहकारी विभाग के प्रतिनिधियों को भी सदस्य बनाना और उनके वेतन देना। इससे मुनाफ़ा बिना ज़रूरत उनमें बंटता।

### मज़दूर से ठेकेदार बनीं

आज लगभग 4000 महिलाओं का उन खदानों पर पूरा नियंत्रण है जहां वे पहले मज़दूरी करती थीं। इन महिलाओं के पति वहां दिहाड़ी पर मज़दूरी करते हैं। उन्हें भी फायदा हुआ है। ज़्यादा मज़दूरी और नियमित रूप से रोज़गार मिलता है। दिहाड़ी तो उत्पादकता के हिसाब से मिलती है लेकिन फायदा सब सदस्यों में बराबर बराबर बंटता है।

पलानिअम्मा, चिंतामनि, वसंता, कुडिमिया

मलाई गांव के तीन समूहों की नेता हैं। वे समूह का हिसाब-किताब खुद देखती हैं। 'एरीवोली' समूह द्वारा चलाए गए पूर्ण साक्षरता अभियान के तहत वह पढ़ना लिखना सीख चुकी हैं। एक छोटी ट्रेनिंग भी वे ले चुकी हैं। इससे उन्हें अपना सब काम करने में बहुत मदद मिली है। नवसाक्षरों के लिए खासतौर पर निकाला समाचार-पत्र पढ़ कर देश में क्या हो रहा है वे इसकी जानकारी भी हासिल कर लेती हैं।

## परिवार की खुशहाली

पहले जहां उन्हें 6 रु. रोज़ मज़दूरी मिलती थी आज 35 रु. रोज़ तक कमा लेती हैं। परिवार को बेहतर खाना, बेहतर कपड़े, शिक्षा व दवादारू के ठीक मौके मिल पाते हैं। चिंतामनि अपना घर खरीदने जा रही हैं। पलानिअम्मा व वसंता पहले ही घर खरीद चुकी हैं। रुपए-पैसे पर महिलाओं के नियंत्रण से रुपया शराब व जुए में नहीं खर्च होता है। महिलाओं की ग़रीबी के खिलाफ़ लड़ाई कहीं ज़्यादा सफल रही है।

सरकार को भी इससे कम मुनाफ़ा नहीं हुआ है। पहले ठेकेदार कम आमदनी दिखाकर बहुत कम मुनाफ़ा सरकार को देते थे। कभी-कभी तो सरकार को सालाना कर के रूप में सिर्फ 525 रु. मिले। उसके मुकाबिले 1992 में सरकार को 25 लाख रु. मिले। 1993 में यह रकम 48 लाख तक पहुंचेगी जिसमें 38 लाख तो महिला समूहों द्वारा संचालित खदानों से मिलेगा।

## अड़चनें

महिलाओं का काम आसान नहीं रहा है। पुराने ठेकेदार, राजनेता, भृष्ट सरकारी कर्मचारी सब उनके पीछे हाथ धोकर पड़े रहते हैं। शुरू में तो ठेकेदार उनकी ट्रक व गाड़ियां आने जाने नहीं देते थे। कई बार तो उन्होंने रास्ते की सड़कें तोड़-फोड़ डालीं। माल की बिक्री में भी अपनी भरसक रुकावट डालते रहते हैं। ठेका हर साल के साल मिलता है। पुराने ठेकेदार सरकार पर बराबर दबाव डालते रहते हैं कि महिलाओं को ठेका न दिया जाए। लेकिन सरकारी मुनाफ़े के आंकड़े ही महिलाओं की मजबूती है।

साभार : टाइम्स आफ़ इंडिया

# पत्थरों को तोड़ा है

पत्थरों को तोड़ा है पर्वतों को फोड़ा है
बनाया मकान हमने ईंट लहू को जोड़ा है
कोठी तुम्हारी.....झोंपड़ी हमारी
चरखा घुमाया है, सूत बनाया है
कपड़ा बनाते अपनी नस नस को खींचा है
कपड़ा तुम्हारा.....काम हमारा
मशीनों को चलाया उद्योग बढ़ाया
ताक़त की बिजली से फ़ैक्टरी को सजाया
पैसा तुम्हारा.....खून हमारा

धरती को खोदा है, बीज को बोया है
धान उगाया हमने लहू अपना सींचा है
फ़सल तुम्हारी.....भूख हमारी

मिल गया जवाब हमें, उठाया हथियार हमने
शिक्षा के रास्ते पे चलने लगे हम सब
हार तुम्हारी.....जीत हमारी।

—चेराबंधु राजू
(एक तेलगू गीत से अनुदित)

# डंगर दाई कुकूबेन

जुही जैन

राजस्थान में एक गांव है उपरगमिया। यहां के लोग जानवर पालकर रोज़ी-रोटी जुटाते हैं। पर जानवरों के इलाज़ के लिए यहां कोई साधन नहीं है। पिछले साल गांव में अकाल पड़ा। जानवर मरने लगे। सभी लोग परेशान थे। सरपंच का बैल बीमार पड़ गया। ओझा को बुलाया गया। उसने मक्का के दाने लेकर मंत्र पढ़ा। फिर लोहे की ज़ंजीर से बैल को पीटने लगा। सरपंच की घरवाली घबरा गई। वह दौड़कर अपनी सहेली कुकूबेन को बुला लाई।

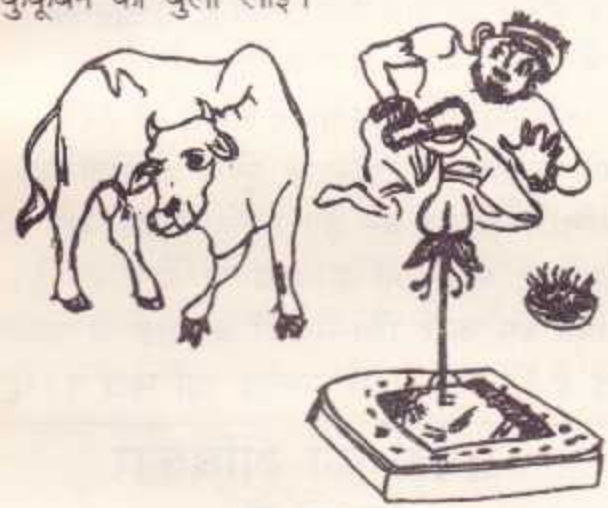

## कुकूबेन ने इलाज़ किया

कुकूबेन डंगरदाई का काम करती है। डंगर यानि जानवर। दाई यानि इलाज़ करने वाली। बैल को देखते ही कुकूबेन ने कहा, 'इसे अफारा हो गया है। कड़ी धूप में पका चारा खाने से ऐसा हो जाता है।' उसने दवा बनाकर बैल को पिलाई। फिर उसके पेट पर हाथ फेरने लगी। करीब दो घंटे में बैल को आराम आ गया।

राजस्थान में एक संस्था काम करती है। इसका नाम है जन-शिक्षा एवं कल्याण संस्था। संस्था ने पिछले साल गांव में महिला मेला लगाया था। इसी मेले में कुकूबेन ने औरतों को डंगरदाई का काम सिखाने के बारे में सुना। उसने तय कर लिया कि वह भी यह काम सीखेगी। डंगरदाई बनकर गांव के जानवरों का इलाज़ करेगी।

## औरत करे पुरुषों का काम

काम तो कुकूबेन सीख गई। पर गांववालों को उस पर विश्वास नहीं था। फिर जितने मुंह उतनी बातें। औरत डाक्टर का काम करेगी। खुलेआम सब जगह घूमेगी। पुरुष का काम पुरुष को ही शोभा देता है। ओझा ने भी लोगों को भड़काया, 'औरत के हाथ लगाने से जानवर मर जाएंगे।'

कुकूबेन ने हिम्मत नहीं हारी। अपने काम में जुटी रही। औरतों ने उससे चोरी छिपे जानवरों का इलाज़ करवाना शुरू कर दिया। पर पुरुष तो उसके खिलाफ़ थे। जब कुकूबेन ने सरपंच के बैल को ठीक कर दिया तब सबकी आंखें खुलीं। अब सभी लोग उसका आदर करते हैं। जानवर बीमार होने पर अब ओझा को नहीं बुलाते। सीधे कुकूबेन के पास आते हैं। □

महिला मंच, इंदौर की एक रपट

# बेटियों का स्वास्थ्यः एक नया नज़रिया

लड़कियों के स्वस्थ विकास के लिए उनके प्रति हमारा और हमारे समाज का नज़रिया बहुत महत्व रखता है। जिन लड़कियों के मन में विश्वास होता है कि वे भी परिवार की आवश्यक सदस्य हैं, जिनके जन्म पर उनका स्वागत किया गया और उन्हें भाइयों के बराबर लाड़-प्यार मिला वे किसी हीन भावना की शिकार नहीं होतीं।

किशोरावस्था में इस प्यार और सहानुभूति की और भी ज़्यादा ज़रूरत होती है। अक्सर लड़कियों को शरीर में होने वाले बदलावों के प्रति सही जानकारी देने के बजाए उनके मनों में उन प्राकृतिक क्रियाओं के प्रति डर भर दिया जाता है।

यौनिक हिंसा की शिकार लड़की को एक शापित जीवन जीने को मजबूर किया जाता है। स्त्रियों के शारीरिक स्वास्थ्य संबंधी सभी समस्याओं पर एक गोपनीयता का पर्दा परिवार व समाज चाहता है।

सवाल यह है कि समाज व परिवार की इस मार से हमारी बेटियों को बचाया जा सकता है?

देखा गया है कि यदि परिवार वाले बेटी को दोषी न ठहराएं, उसको हर तरह से सहारा दें तो समाज का रुख भी बदल जाता है।

सवाल चाहे लड़की के शरीर का हो, उसकी शारीरिक प्रक्रियाओं का हो, प्रजनन समस्याओं या रोगों का हो, इस संबंध में परिवार के लोगों का नज़रिया बदलना बहुत ज़रूरी है। लड़कियों के स्वास्थ्य संबंधी-जानकारी सभी को ही दी जानी चाहिए। आगे चलकर तो उन्हें विवाह-सूत्र में बंधना ही है। बहुत-सी अनावश्यक परेशानियों से बचा जा सकता है यदि यौन संबंधी सही शिक्षा व जानकारी उन्हें दी जाए।

स्वस्थ जीवन के लिए स्वास्थ्य संबंधी जानकारी बहुत ज़रूरी है। इसमें दुराव-छिपाव से कुछ भी हासिल होने वाला नहीं है। इसमें शर्म आड़े नहीं आनी चाहिए। इन सबको लेकर हम में से ज़्यादातर लोग अनेक कुंठाओं व गलत सोच के शिकार हैं। कभी कायरता तो कभी ज़िम्मेदारी न उठाने की भावना भी रहती है। इसी कारण हम उन बेटियों का साथ नहीं दे पाते हैं जो अनचाहे गर्भ जैसी मुसीबत में फंस जाती हैं।

यह सब एक पुरुष प्रधान समाज की देन है। सारे सामाजिक रीति-रिवाज़ पुरुषों के हितों को ध्यान में रखकर बने हैं। उनको चलाए जाने की ज़िम्मेदारी महिलाओं के कंधों पर थोपी हुई है। औरत इस कदर रीति-रिवाजों के जाल में जकड़ी हुई है कि चाहकर भी निकल नहीं पाती है।\□

## समता का अधिकार

समता का अधिकार सभी को
शिक्षा का अधिकार सभी को
क्यों पड़ते हम ऊंच-नीच भेद-भाव में
सब मानव हैं एक समान
मानवता का अधिकार सभी को
काम करें सब मिल-जुलकर
साथ चलें सब हिलमिलकर
देश के हित में काम करें हम
सब मिलकर यह संकल्प करें हम

गायत्री गुप्ता

## भीलवाड़ा की एक रपट

# समस्या बाल विवाह की

हर साल आखा तीज आती है और हज़ारों छोटे बच्चों के ब्याह कर दिए जाते हैं। समाज के मौजूदा हालातों में लड़कियों के लिए दुख ही दुख है।

गांव की औरतों से इस पर चर्चा की गई। ज़्यादातर औरतों का इसकी वजह से जिंदगी का बहुत खराब अनुभव रहा है। फिर भी बाल-विवाह होते ही जाते हैं। क्यों?

### बाल-विवाह के मूल कारण

— बुजुर्गों का मानना है कि जल्दी ब्याह करने से स्त्री-पुरुष का मन भटकता नहीं और इससे समाज में परिवार की इज़्ज़त बनी रहती है।

— मां बाप को डर होता है कि उनकी कुंवारी लड़की पर कोई बुरी नज़र न डाले। ब्याह के बाद कोई इज़्ज़त खराब नहीं कर सकता।

— सारी ज़िम्मेदारी एक साथ निबट जाए। एक ही खाना देने से सारी लड़कियों (दो, तीन, चार, पांच) की शादी हो जाए। नेग वगैरह भी बार-बार नहीं देने पड़ेंगे।

— धार्मिक आस्था भी है जैसे कन्या (माहवारी शुरू होने से पहले) की शादी करने से ज़्यादा पुन्य मिलेगा। बुजुर्गों की ज़िद भी रहती है कि जीवन काल में छोरा-छोरी का ब्याह देख लें।

— आटे-साटे ब्याह करने का रिवाज़ भी है। यानि भाई के उपयुक्त रिश्ता मिले तो अपने घर की बच्ची का भी उसी घर में रिश्ता तय कर लेना।

— बड़ी होने पर लड़की के योग्य वर नहीं मिलेगा। शादी में दिक्कत आएगी।

### ज़रा सोचें! समझें!

साथिनों की इस क्षेत्र में काम करते-करते एक समझ बनी है। उन्होंने समझाने के नीचे लिखे तरीके निकाले हैं।

— क्या कुम्हार कच्चा घड़ा बेचता है। पहले आग में तपाकर मज़बूत बनाता है। छोटे बच्चे घड़े की तरह हैं। वह पानी यानि जिंदगी का भार नहीं सह पाएंगे। लड़कियों की खेलने कूदने, पढ़ने लिखने की उम्र में उन पर घर गृहस्थी का बोझ डाल देना कच्चे घड़े में पानी भरने के बराबर है।

— अगर बाल-विवाह करने से मन नहीं भटकता तो लोग शादी के बाद भी दूसरी औरत घर क्यों ले आते हैं?

— शादीशुदा लड़कियों के साथ भी छेड़छाड़, यौन हिंसा होती है। यह गांवों और शहरों में सभी जगह होता है।

— यह मान भी लें कि एक साथ शादी करने से उस मौके पर खर्चा कम होता है, तो क्या गौने से पहले शादी-ब्याह, नुक्ता, हारी बीमारी, गंगोज आदि मौकों पर लड़की के ससुराल नेग नहीं भेजना पड़ता। अक्सर कर्ज़ा लेकर खर्चा करना पड़ता है। लड़की के ससुराली रिश्तेदारों के रीति रिवाज़ों में

शामिल होने के लिए आने जाने में ही कितना खर्चा बैठ जाता है। जल्दी शादी करके क्या हम इन ज़िम्मेदारियों से हल्के हो पाते हैं।

— गरीबी लड़के वालों के घर भी होती है। परिवार का हर व्यक्ति मजूरी करता है। घर के काम के लिए लड़की का जल्दी गौना करा लेते हैं। शादी टूट न जाए इस डर से लड़की को भेजना भी ज़रूरी हो जाता है। ऐसे में अपनी ताक़त से ज़्यादा काम लड़कियों को करना पड़ता है। घर में ही ठीक खाना नहीं मिलता, ससुराल में कैसा मिलता होगा?

— क्या पैसे की बचत सोचकर बच्चों का भविष्य नष्ट करना ठीक है? संतान पहले है या रीति रिवाज़?

— कुछ लोगों की यह भी धारणा है कि कम उम्र में आसानी से बच्चे होते हैं। यह गलत है। 20 साल से पहले लड़की का शरीर बच्चा जनने को तैयार ही नहीं होता। जच्चा और बच्चा दोनों को ही कम उम्र में खतरा ज्यादा है।

क्या हम चाहते हैं कि आने वाली संतानें बीमार, कमज़ोर, अपंग हों? इस सबका बुरा असर औरत के शरीर पर बहुत होता है। तीस साल की उम्र में ही कई बच्चों की मां बनकर औरत बूढ़ी, कमज़ोर दिखने लगती है।

जल्दी बच्चे पैदा शुरू करने से ज़्यादा बच्चे पैदा हो जाते हैं। इससे परिवार में ग़रीबी और क्लेश फैलता है। न तो पूरा खाने को मिलता है, न ढंग से पहनने को, एक नंगा तो दूसरा भूखा। जीवन में आगे बढ़ने के अवसर की ऐसे में क्या कहें?

— अगर कहीं लड़की विधवा हो गई और नाते की रसम भी न हो तो बहू कैसे जिएगी? पढ़ी लिखी तो होती नहीं, अपने पैरों पर खड़ा होना मुश्किल।

— कई बार लड़के पढ़ लिख जाते हैं, अनपढ़ गंवार पत्नी से निभा नहीं पाते।

— बाल विवाह क़ानूनन भी गलत है। 21 साल से कम उम्र के लड़के और 18 साल से कम उम्र की लड़की का ब्याह करने पर माता-पिता और पंडित को कैद की सज़ा व जुर्माना भी हो सकता है। पर क़ानून काफी नहीं है। हमें अपनी समझ व सूझ-बूझ का इस्तेमाल करना होगा।

## परंपराएं बदलें

हम सड़ी गली परंपराएं क्यों चलाएं? यह सारे रीति रिवाज़ इंसानों के ही बनाए हैं। जो रिवाज़ आज ठीक नहीं लगते हम उन्हें क्यों न बदलें?

कई बार बड़ी बूढ़ियां पूछती हैं अब तो रिश्ता तय हो गया, क्या करें? लेकिन इसके बाद भी शादी रोकी जा सकती है। अगर शादी हो ही गई है तो गौना 18 साल के बाद ही करें। तब तक लड़कियों को पढ़ाएं लिखाएं। क्या आप चाहती हैं कि आप जो भुगत/सह रही हैं आपकी बेटियां भी सहें?

**साभार: साथिन रो कागद, इदारा, भीलवाड़ा**

# कुछ यहां की: कुछ वहां की

## शराब और गरीबी

शराब पीने और गरीबी के बीच एक सीधा रिश्ता है। यह बात हाल में हुए पुद्दूकोट्टाई (तामिलनाडू) ज़िले के 500 गांवों में हुए एक सर्वे के दौरान साफ़-साफ़ सामने आई।

नवंबर 92 से मार्च 93 तक औसतन हर 45 मिनट में एक ग़ैरकानूनी शराब बनाने व बेचने वाला पकड़ा गया और हर दो घंटे में एक को सज़ा हुई। सिर्फ़ 13 लाख रु. तो उन्होंने जुर्माना दिया। ठेकेदारों को एक तिहाई से ज़्यादा फायदा गांव में शराब की बिक्री से है। लगभग 22.5 करोड़ रुपए का सालाना फायदा शराब के इन ठेकेदारों को है। यह सब गांव वालों की जेब से ही जाता है।

सर्वे में पाया गया कि लगभग हर पुरुष मज़दूर शराब पीता है। और अक्सर अपनी रोज़ की आमदनी से ज़्यादा शराब पर खर्च करता है। इस कारण वह खर्चे के चंगुल में भी फंसा रहता है। कुपोषित परिवार कमज़ोर स्त्रियां और बच्चे तो हैं ही, खुद पुरुष भी अनेक बीमारियों का शिकार बनता है।

## सोच बदलनी ज़रूरी

"जन्मदर घटनी तब तक संभव नहीं जब तक महिलाओं को समान दर्जा नहीं मिलता।" यह कहना है सयुंक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष की कार्यकारी निदेशक नफीस सादिक का। दूरगामी विकास और मानव जाति की रक्षा के लिए यह ज़रूरी है कि देश अपने यहां महिलाओं और लड़कियों पर अधिक ध्यान दें। उन्हें समान अवसर दें।

पुरुषों को अपनी सोच बदलनी बहुत ज़रूरी है। बच्चे पैदा करने के मामले में फैसले पुरुष के बजाए महिलाओं को करने की छूट होनी चाहिए। कई जगहों पर अधिक बच्चे पैदा करना पौरुष की निशानी माना जाता है चाहे इसके लिए उसे एक से ज़्यादा बीबियों की ज़रूरत हो। यह सब ग़लत सोच के कारण है।

हिंदुस्तान समाचार-पत्र

## कुछ करना है, आगे बढ़ना है

गंगा और गीता, दोनों बहनों में बहुत प्रेम था लेकिन स्वभाव एकदम भिन्न। गीता पढ़ाई करना चाहती थी। उसका पढ़ाई में बहुत मन था लेकिन मां-बाप उसे आगे पढ़ाना नहीं चाहते थे। वे दोनों बहनों की शादी करना चाहते थे। लेकिन गीता ने मां-बाप की मार-डाट फटकार सुनकर भी पढ़ाई जारी रखी।

गंगा की शादी कर दी गई। अशिक्षित होने के कारण ससुराल वालों ने बहुत जुल्म किये। उसमें विरोध करने की क्षमता नहीं थी। दहेज के कारण ताने, मारपीट सब कुछ सहती और चुप रहती गंगा। एक दिन उसको ससुराल पक्ष के लोगों द्वारा जला दिया गया देहज के कारण।

यह सदमा उसकी बहन गीता बर्दाश्त नहीं कर पाई। उसने संघर्ष करने की ठान ली। उसने गांव की औरतों को पढ़ाई का महत्व समझाया और उन्हें पढ़ाई करने को कहा। जिस घर में नारी पर अत्याचार होता, गीता उस घर में जाती और पीड़ित

बहन की सहायता करती।

इस तरह वह घर-घर जाकर शिक्षा का प्रचार करती है। नारी पर हो रहे अत्याचारों से खुद भी लड़ती है और उस नारी को जिस पर अत्याचार हो रहा हो उसे भी संघर्ष करने को कहती है। इस तरह उसने गांव की कई औरतों को अत्याचारों से बचाया। वह नहीं चाहती कि जो अत्याचार उसकी बहन गंगा पर हुआ है वह और किसी मासूम नारी पर हो। उसने दिखा दिया कि नारी अबला नहीं है, सबला है।

अतः हर सबला नारी को यह कहना होगा कि—

अब नहीं सहना जुल्म, अब तो पढ़ना है
आगे बढ़ना है, कुछ करना है, कुछ करना है

विद्या सोनी

## चार बाल विवाह रुके

सौपुरा गांव, ज़िला भीलवाड़ा, राजस्थान में चार नन्हीं बच्चियों का जीवन बिगड़ने से बचा। इनकी उम्र थी 2 से लेकर 10 वर्ष। इनके ब्याह की पूरी तैयारी हो चुकी थी। तेल-हल्दी सब चढ़ चुका था। ग्राम साथिनों, प्रचेताओं, महिला विकास कार्यालय से जुड़े लोगों की 3-4 दिन समझाने बुझाने की मेहनत से आखिर यह बाल विवाह रुके। इसमें प्रशासन से भी मदद मिली।

उस समय तो उन घरों के लोगों को बुरा लगा पर क्या यह सच नहीं है कि इन चार मासूम बच्चियों का जीवन सुधरा।

**टाबर-टाबरी शादी**
**अनपढ़ री है निशानी**

साथिन रो कागद
ज़िला इदारा भीलवाड़ा

बहन की सहायता करती।

इस तरह वह घर-घर जाकर शिक्षा का प्रचार करती है। नारी पर हो रहे अत्याचारों से खुद भी लड़ती है और उस नारी को जिस पर अत्याचार हो रहा हो उसे भी संघर्ष करने को कहती है। इस तरह उसने गांव की कई औरतों को अत्याचारों से बचाया। वह नहीं चाहती कि जो अत्याचार उसकी बहन गंगा पर हुआ है वह और किसी मासूम नारी पर हो। उसने दिखा दिया कि नारी अबला नहीं है, सबला है।

अतः हर सबला नारी को यह कहना होगा कि—

अब नहीं सहना जुल्म, अब तो पढ़ना है
आगे बढ़ना है, कुछ करना है, कुछ करना है

विद्या सोनी

## चार बाल विवाह रुके

सौपुरा गांव, ज़िला भीलवाड़ा, राजस्थान में चार नन्हीं बच्चियों का जीवन बिगड़ने से बचा। इनकी उम्र थी 2 से लेकर 10 वर्ष। इनके ब्याह की पूरी तैयारी हो चुकी थी। तेल-हल्दी सब चढ़ चुका था। ग्राम साथिनों, प्रचेताओं, महिला विकास कार्यालय से जुड़े लोगों की 3-4 दिन समझाने बुझाने की मेहनत से आखिर यह बाल विवाह रुके। इसमें प्रशासन से भी मदद मिली।

उस समय तो उन घरों के लोगों को बुरा लगा पर क्या यह सच नहीं है कि इन चार मासूम बच्चियों का जीवन सुधरा।

**टाबर-टाबरी शादी**
**अनपढ़ री है निशानी**

साथिन रो कागद
ज़िला इदारा भीलवाड़ा

# हम सबला हैं, हम सबला हैं

वे कहते हैं हम अबला हैं
पर हम कहते हम सबला हैं

वे कहते हैं हम आश्रित हैं
हम बेदर हैं, हम बेघर हैं
हमें जीवन उनसे मिलता है
हम जन्म-जन्म के शापित हैं

हम कहते हैं हमसे जीवन है
हम हंस कर जीवन जीते हैं
हम हंस कर जीवन देते हैं,
हम कोमल हैं, कमज़ोर नहीं
अब चलेगा कोई ज़ोर नहीं

घर-आंगन हमीं से बनता है
ये दर, वो दीवारें हमीं से बनती हैं
हम चलते हैं, सृष्टि चलती है
हम रुके तो सृष्टि रुक जाए

फिर क्यों हम रो-रो रह जाएं
फिर क्यों हम अबला कहलाएं
आओ सब मिल उनको झुठलाएं
हम सबला हैं, सबला ही कहलाएं।

मणिमाला

साक्षरता मेरा अधिकार है